सरयू तीर शृंगार विपिन में अति अनूप छवि न्यारी।
सुमन सिंगार किये नख शिख लौं निज कर श्याम संवारी।।

"श्रीरामानन्द साहित्य माला" पुष्प ७५ वाँ

श्रीसीतातत्त्वमुपास्महे

श्रीसीतास्तोत्र सुधासागरः
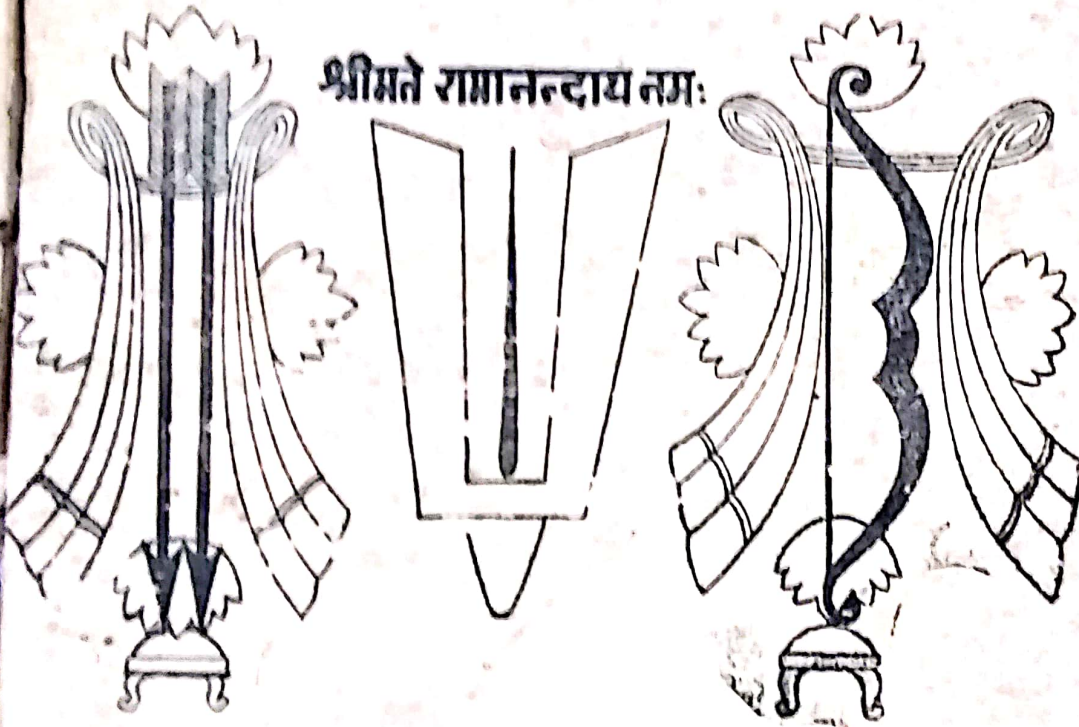
सम्पादक—

अवधकिशोरदास श्रीवैष्णव

"प्रेमनिधि"

स्वमनोरथ निवेदन स्तोत्रम्

यद्यपि गुणगणानामवधिरासीत्सुखात्मा दिनमणिकुलभानु र्भावनीयो जनानाम् ।
निमिकुलकुमुदानां चन्द्रिके चित्रशोभे तदपि तवगुणानां दीप्तिरासीत् विशेषात् ॥१॥

यथा स्वकीयैर्गुण रूपरत्नैर्क्रीतः स्वकान्तो नृपनाथ पुत्रः ।
मनोरथान् सिद्धयतु सा मदीयान्नाम प्रयुक्तान्मिथिलेन्द्र पुत्री ॥२॥

श्रीराघव प्राणपतीक्षुकानां श्रीजानकीपादरजः प्रपत्तिम् ।
विहाय तत्सिद्धिकरं न चान्यत्काल त्रयेलो कत्रयेऽपि कस्स्यात् ॥३॥

रामाय सत्साधनमेक सीता तस्यै परं साधनमस्ति रामः ।
एवम्प्रसक्ते परदेवतेद्वे परस्परं सिद्धिपदे भजामः ॥४॥

अस्त्वेव सन्मङ्गल मोदमूलं त्वत्पाद पद्मं मिथिलेन्द्र पुत्री ।
भर्त्तुः कराकल्पित लक्तचित्रं पवित्रपोतं भजतां भवाब्धौ ॥५॥

कण्ठे विधायात्मभुजां स्वभर्तुर्मध्याह्नके भोजनकोत्तरे च ।
स्वापायने मञ्चसमाश्रितायाः सुकल्पवीटिं वरनागवल्याः ॥६॥

बिम्बाधरारक्त विविक्तरागे मुखे प्रदास्यामि कदा तवाहम् ।
इत्याभिलाषो हृदये सदा मे यदानुगृह्णासि तदैव सिद्धिः ॥७॥

न कामुकी ते परिचारिका वै सम्बन्धमात्रं परिकामयेऽहम् ।
कान्ते रमन्तीं परशीलये त्वां ताम्बूल वारि व्यजनादिभिश्च ॥८॥

त्वत्पादपाथोजपरागसिद्धि भजे न भाग्यं किल स्वात्मनिष्ठम् ।
इष्टप्रदे राघवपट्टकान्ते स्वेष्टं मदीयं तव पादसेवा ॥९॥

गन्धर्वयक्षोरगकिन्नराणां वेतालविद्याधरदिक्पतीनाम् ।
देवाप्सरोभूमिभुजां च पुत्र्यो रामे प्रकामं नितरां रमन्ते ॥१०॥

तत्रास्ति तासां तपसां फलम्वा किमस्तितासामति रूपसम्यक् ।
तत्कारणं ते मिथिलेन्द्र पुत्रि कृपा च शीलञ्च ह्युदारता च ॥११॥

भविष्ययोगो हि भजत्कृपालौ स्याम्मे न रामे खलु तस्य तत्वम् ।

तस्योपविष्टा किल योगमुद्रा श्रीर्लभ्य सिद्धिः कथमेव नहि ॥१२॥
पूर्णा हि ते राघव पादुकाऽस्ते कृपानिधौ चेद् गमितेन या ता ।
कथं नु तावच्च मनोरथेन्दुः पूर्णोऽभवेन्मे कलया कृपालो ॥१३॥

सुकान्तिरुवाच—

हे सीते जनकात्मजे रघुवरप्राणप्रिये श्रूयताम्—
पादौ पद्ममनो हरौ भवति ते सन्मन्दिरम्मेसदा ।
तत्रैवेहि प्रवेहि निश्चलधिया सद्भिश्च संसेवितम्—
नान्यं चास्ति हि मास्तु किञ्च सुखदस्त्वत्पादमित्रं गृहम् ॥१४॥

या-या मे हृदये मनोरथतती दुर्घट्यमानाप्यसौ—
त्वत्पादस्मरणात्समस्तविधिना सम्पूजिता सत्फलैः ।
साक्षात् स्वामिनि तत् पदाब्जयुगलं सद्भक्ति माध्यञ्जने—
द्रष्टुमिच्छामि न दृश्यतेति सुखदं लोकत्रये वस्तु तत् ॥१५॥

॥ इति श्रीअमररामायणोक्तं श्रीसुकान्तिप्रोक्तं स्वमनोरथनिवेदनस्तोत्रम् सम्पूर्णम् ॥

—: स्वमनोरथनिवेदन स्तोत्रम् :—

यद्यपि आनन्दात्मा सूर्यवंश सूर्य स्वरूप श्रीरामजी भावना करने वाले प्रेमीजनों के उपासनीय समस्त गुण गणों के गम्भीर समुद्र ही हैं तथापि निमिकुलकुमुदों को विकसित करने वाली चन्द्रिका रूपी विचित्र शोभा सम्पन्न हे श्री किशोरी जी आपके गुणगणों की दीप्ति कुछ विशेष ही है इसमें कोई संशय नहीं है ॥ १ ॥ जिसने अपने अनुपम गुण रूपी रत्नों द्वारा चक्रवर्तिराजेन्द्रकुमार अपने स्वामी को खरीद लिया है, वह श्रीमिथिलेन्द्रराजकुमारीजू मेरे मनोरथों को पूर्ण करें ॥ २ ॥ श्री राघवेन्द्र जू को जो अपनी भावना से प्राणपति बनाना चाहती हैं उनके लिये श्री जानकी जी के चरण धूलि की शरणागति ही एकमात्र उपाय है । इसको छोड़कर तीन लोक में तीन काल में अन्य कोई साधन सिद्धि प्रदान करने में कदापि समर्थ नहीं हो सकता है ॥ ३ ॥ रामजी की कृपा प्राप्ति का साधन श्रीसीताजी हैं, तथा श्रीसीताजी की कृपा प्राप्ति का साधन श्रीरामजी ही हैं । इस प्रकार परस्पर सिद्धि प्रदान करने वाले परात्पर ये दोनों देवताओं का भजन करते हैं ॥ ४ ॥ हे मिथिलेन्द्र पुत्री ! आपके चरणारविन्द ही सद् मंगलमोद के मूल कारण हैं । भजन करने वाले भक्तों को भवसागर तरने के लिए आपके भर्ता प्रभु श्रीराम का करावलम्बन ही पवित्र पोत (जहाज) है, क्योंकि उन्होंने अपने करकमल में आपके श्रीअंग का रंग धारण कर रखा है ? ॥ ५ ॥ मध्याह्न काल के भोजनोपरान्त अपने प्राणपति के कण्ठ में ललित भुजा डालकर मंच (शय्या) पर शयन करने जाते समय कल्पलता के सदृश नागरवेल के पान कीबीड़ा बनाकर आपके बिम्बाफल

के समान लाल ओठों को अधिक अनुरक्त करने के लिये मैं कब प्रदान करूंगी । यह अभिलाषा मेरे मन में सदैव बनी रहती है परन्तु जब आप अनुग्रह करेंगी तभी मेरे हृदय की भावना परिपूर्ण होगी ॥ ६-७ ॥ मैं संसार की तुच्छ कामना के वशीभूत होकर नहीं मैं तो विशुद्ध भाव से आपकी परिचारिका (दासी) का सम्बन्ध मात्र प्राप्त करना चाहती हूँ । आप जब अपने प्राणनाथ के साथ विहार विलास करती रहोगी तब मैं पानबीड़ा-पंखा तथा मधुर शीतल जल प्रदान कर आपकी परिचर्या से प्रसन्न रहूँगी ॥ ८ ॥ आपके चरण कमल के पराग धूलि की सेवा ही मेरी परम सिद्धि है, मेरा ऐसा भाग्य नहीं है जो मैं आत्मानन्द रमण करने वाले स्वामी को प्राप्त करने वाले स्वामी को प्राप्त हो जाऊं । हे श्री राघवेन्द्र जू की पटराणी ! मेरी तो इष्ट सिद्धि प्रदायक आपके श्रीचरणों की सेवा ही है ॥ ६ ॥ गन्धर्व यक्ष-नाग-किन्नर-वेताल-विद्याधर-दिकपाल-देव-अप्सरा तथा पृथिवी के राजाओं की राजकुमारियाँ सब श्रीराम में ही सम्पूर्ण रीति से यथेष्ट रमण करती हैं ॥ १० ॥ उसमें क्या उनके तपस्या का फल प्राप्त हुआ हैं अथवा क्या उनका ऐसा ही विलक्षण स्वरूप सौन्दर्य हैं ? नहीं-नहीं ये कुछ भी नहीं हैं उसका कारण तो हे श्री मिथिलेशकुमारी जू ! केवल आपकी कृपा उदारता और शालीनता ही है ॥ ११ ॥ परम कृपालु आप तथा श्रीराम युगलप्रभु के मिलन का योग नहीं होता है इसमें भी क्या कोई रहस्य है क्योंकि उसकी उपदेष्टा जब स्वय श्री योगमुद्रा जी हैं तब हमको दर्शन की सिद्धि दुर्लभ ही क्यों रह जाती है ? ॥ १२ ॥ हे श्रीराघवजू की पटराणी श्रीकिशोरी जू ! आपकी कृपा प्राप्ति की तिथि को ही पूर्णा तिथि गणितज्ञ ज्योतिषियों ने बतलायी है तब मेरा मनोरथ रूपी चन्द्रमा की कलायें अभी तक पूर्ण क्यों नहीं हो रही है हे ? कृपालो ! इसका कारण तो आप हीं जाने ॥१३॥ श्रीसुकान्तजी बोलीं—हे सीते ! हे रघुवर ! प्राण प्रिये । मेरी एक बात सुनिये । आपके मन को हरण करने वाले युगल चरणारविन्द ही मेरा मन को रहने का सुन्दर मन्दिर बन जाय हे स्वामिनी जू ! हे श्रीवैदेही जू । आप सज्जनों से सुसेवित यही सुन्दर घर अविचल बुद्धि से हमको रहने के लिये दे दीजिये, हमको और कोई घर है ही नहीं, और आपके श्रीचरणों को छोडकर सुखप्रद घर अन्य कोई कभी होवे भी नहीं ॥ १४ ॥ मेरे हृदय में जो-जो दुर्लभ मनोरथो की लहरियां लहराती हैं, वह आपके चरणारविन्द के स्मरण से ही सम्पूर्ण होकर सुन्दर फल प्रदान कर सकती हैं । हे स्वामिनी जू । आपके युगल चरणारविन्द जो सद्भक्ति से भावित सज्जनों द्वारा आराधनीय हैं उनका मैं दर्शन करना चाहती हूं । उसके विना तीनों लोक में कोई भी सुख प्रदायक वस्तु दीखती ही नहीं है ॥

॥ यह श्री अमर रामायणोक्त "स्वमनोरथ निवेदन स्तोत्र" सम्पूर्ण हुआ ॥

॥ जय विदेह योगिराज ॥

जगति सकल कार्यं सुष्ठु सम्पदायन्तं- सतत हृदि परमानन्दसिन्धौ निमग्नम् ॥
श्वसुरममरवन्द्य रामचन्द्रस्य साक्षात्, निमिकुलतिलकं तं योगिवर्यं नमामि ॥

जगत् के सभी कार्य सुन्दर रूप से सम्पादन करते हुए जो मन से सदा सर्वदा परमानन्द समुद्र में निमग्न रहते हैं ऐसे देवताओं द्वारा अभिवन्दनीय साक्षात् श्रीरामचन्द्र प्रभु के श्वसुर निमिवंश तिलक योगिराज श्रीजानकीजी को मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूं ॥

—: अथ श्रीजानकी जयति स्तोत्रम् :—

अर्च्यां शिवार्चितां दिव्यैरलंकारैरलंकृताम् ।
स्तुतिं चकार स्तोत्रेण महाविष्णु महाशिवः ॥१॥

श्रीमहाविष्णुरुवाच—

जयति जनकपुत्री राम वामांक संस्था जयति युगविधात्रीं विश्वधात्रीं कराब्जा ।
कनकसदनशोभां लोकचित्रां लिखन्तीं रघुवरवरभागा भाविनी मंगलं मे ॥२॥
कनकभवन खण्डे पादसंचारणाढ्यै सितमणिगणभूमिः पद्मरागास्ति यस्या ।
जयतु जनकजाया चिन्मयी ब्रह्मरूपा रघुवरमुददात्री सद्गुणानां धरित्री ॥३॥
मुकुरगृहरमन्त्याश्चन्द्रकोटिश्चभित्तौ सततमुदयमस्या आस्य मेवा करोद्वै ।
कलित कमलश्रेणी तत्र तत्रैव जाता करकमल विभावैर्निर्दिशन्त्याश्च चित्रम् ॥४॥
जयति जनक पुत्र्याः पादपद्मप्रभावो यदनुगतनखानां पंक्तितश्चन्द्रपंक्तिः ।
विलसति खलु लोके भिन्न ब्रह्माण्डके स्वे तदभिगत कलंका शंकरस्यापि भाले ॥५॥
जयति जनकपुत्र्याः पादसंचारण श्रीश्चकितमपि विधत्ते यांच वीद्येन्द्र नागाः ।
निज हृदि तनुभावं राजहंसाः विदध्युः रघुवररस मूर्तिर्वीक्ष्य मोदाब्धि मग्नः ॥६॥
जयति जनकजायानेत्रयुग्मं विशालं रघुवर रसवांस सौकुमार्य्यादि भासम् ।
प्रणतजन दयार्द्रं कोप भावाऽस्पृशं वै मुकुलितमिवदोषान्वीक्षितुं सेवकानाम् ॥७॥
जयति जनकपुत्रया मुद्रिका कंकणाभ्यां विभूषित करयुग्मं कञ्जमेवाप्त नालम् ।
निजकृतदुरितेभ्य स्त्राशमेवाप्तकेषु स्वभयवरदमुद्रं स्वाशिषांवत्सुमुद्रम् ॥८॥
जयति जनकपुत्र्यारागविद्या समग्रं रघुपतिमति कर्षं मोदवर्षं विचित्रम् ।
अमितगति सुतालं मूर्छनाग्रामजालं स्वरमुनि मितयुक्तं ग्रामयुक्तं त्रिभिर्वै ॥९॥
जयति जनकजाया भारती भव्यरूपा वसुरसपरिपूर्णाशिब्दशद्मा मृतासा ।
ऋजु रचितपदानां संहिता संस्कृता या रघुपति मति दीक्षा लंकृतेयुग्मशिक्षा ॥१०॥
जयति जनकपुत्र्याः पारमैश्वर्यभावो सुरानरमुनिसिद्धैर्यच्छ्रया स्तूयमानः ।
अमित विभवलक्ष्मी लोकब्रह्माण्डभिन्नाः प्रभवति खलु यस्या अंशतस्तांनिषेवे ॥११॥

जगदुदयकरैका कालरूपाद्वितीया पुनरपिगतमध्ये पालने पातु दक्षा ।
तवपदनखा दीप्त्या शक्तिरेकासमर्था प्रभवति खलु सीतातिसृणां भूतभावा ॥१३॥
तब पतिपद स्वङ्कााद् ब्रह्मविष्णुर्हरोऽयं अनुजभबगतरूपास्तेऽपि ताभिःसमेता ।
रचयतिपुनरेकापालयेत् भक्षयेद्वै निवसति निजलोके यावदीक्ष्यास्ति ते वै ॥१३॥
त्वमसिपरतमेशी नैव त्वत्तः परास्यात्तवपति रघुनाथोऽसौ समस्तात्परात्मा ।
ननु भवति तु भेदोलिङ्ग व्याख्यानशास्त्रे भवति न खलुतत्त्वे राम सीतास्वरूपे ॥१४॥
तवगुणगण मूर्त्तिः स्यामहं रामचन्द्रः प्रथम गुरुवरं मे श्रीमहाशम्भुरास्ते ।
उररि कुरू ममेदं स्तोत्रकं रामसीते कृतमपि गुरूणा मे साहसं स स्वरोक्तम् ॥१५॥

श्रीयाज्ञवल्क्य उवाच—

एवं कृत्वा स्तवं देवं देवो महाविष्णुर्महाहरः ।
समूवाच शिवं देवं प्रशंसापूर्वया गिरा ॥१६॥

॥ इति श्रीजानकीजयतिस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥
श्रीस्वामी जनकराजकिशोरीशरण श्रीरसिक अली विरचित अमररामायणान्तर्गत
श्रीजानकीजयति स्तोत्रम् ॥

—:※:—

॥ श्रीजानकी जयति स्तोत्रम् ॥

श्रीमहाविष्णुरुवाचः—

परम पूज्या श्रीशिवजी द्वारा पूजनीय. दिव्य अलङ्कारों से अलंकृत श्रीजानकीजी के चरणों में नमस्कार कर श्रीमहाविष्णु तथा महाशम्भु ने इस प्रकार स्तोत्र पढ़कर श्रीजू की स्तुति प्रारम्भ की ॥ १ ॥

श्रीराम वामांग में विराजित श्री जनकलली की जय हो। युगों की बनाने वाली विश्व जननी हाथ में कमल पुष्प धारिणी आपका जय हो। कनकभवन की महाशोभा-विचित्र लोकचित्रों को लिखने वाली श्री रघुनाथ जी की श्रेष्ठ पत्नी, हमारे परम मङ्गल की भावना करने वाली आपका जय हो ॥ २ ॥ कनकभवन के प्रांगण में जिनके चरण कमलों के तलवों की लाली से स्फटिकमणिजटित भूमि भी लाल-लाल हो जाती है ऐसी श्री जनककुमारी चिदानन्दमयी-ब्रह्म स्वरूपा-श्रीरघुनाथजी को आनन्द प्रदाता-सद्गुणों की दिव्य भूमि श्री जानकी जी का जय हो ॥ ३ ॥ दर्पणों से जटित गृह में खेलती हुई अपने मुखचन्द्र की शोभा से उसकी काच भीतों में करोड़ों चन्द्रों का उदय करने वाली तथा चित्रों को दिखाने के लिये अंगुलि निर्देश करते समय अपने करकमल से कमलों की पंक्तियां निर्माण करने वाली हे सीते ! आपका जय हो ॥४॥ श्रीजनकदुलारी जी के उन श्रीचरणकमल के प्रभाव का सदा जय हो, जिनके साथ लगे हुए नखों की पंक्तियों से चन्द्रमा की अनन्त पंक्तियां उत्पन्न होती रहती हैं जो भिन्न भिन्न ब्रह्माण्ड गोलकों के आकाश

में शोभा देते रहते हैं तथा जिनकी एक कला भगवान् शंकर ने अपने ललाट में धारण कर चन्द्रमौलीश्वर पद प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ श्री जनकराजकुमारी की मनोहर चलने की शोभा सदा विजयी रहे, जिसको देखकर मत्तगजेन्द्र भी चकित हो जाते हैं तथा राजहंस भी अपने को तुच्छ समझने लगते हैं एवं रसमूर्ति श्री रामचन्द्र जी आनन्द सिन्धु में निमग्न हो जाते हैं ॥ ६ ॥ श्रीविदेह राजनन्दिनी जू के विशाल दोनों नेत्र कमलों का सदैव जयकार हो। जो श्री रघुनन्दन जू के रस का शुभ निवास स्थान हैं, अत्यन्त सुकुमार हैं, प्रणतजन पर सदैव करुणा भरित रहते हैं, कोपभाव का कदापि स्पर्श नही करते हैं. तथा सेवकों के दोषों पर दृष्टिपात न हो इसलिए मानों संकुचित रहते हैं ॥ ७ ॥ मुद्रिका कङ्कणादि विभूषणों से विभूषित श्री जानकी जू के युगल करकमलों के समान अति सुन्दर है जो अपने किये हुए पापों के भय से भयभीत सज्जनों को अभयदान देने वाले तथा वरद मुद्रा से सुशोभित आशीर्वादों के समुद्र रूप हैं ॥ ८ ॥ श्री जनकराज पुत्री की समग्र राग विद्या की सदा जय हो, जो श्रीरामजी की मति को आकर्षित करने वाली तथा विचित्र आनन्द बरसाने वाली है. अपरम्पार ताल-गति-स्वर तथा मूर्छना तथा ध्वनि समूह के जाल से संयुक्त अति मनोहर है ॥ ९ ॥ श्रीजानकी जी की दिव्य भारती की सदैव जय हो, जो नवरस परिपूर्ण तथा अमृतमय सुन्दर शब्दों का मन्दिर है, कोमल पदों से संयुक्त संस्कृत तथा जो लौकिक पारलौकि उभय शिक्षा सम्पन्न श्री रघुपति की मति की अलङ्कार स्वरूपा है ॥ १० ॥ श्रीजनक लड़ैती जू के परमैश्वर्य भाव की सदा जय हो, जिनको सुर-नर-मुनि तथा सिद्धजन याचना तथा स्तुति करते हैं। तथा जिनकी सेवा करती हैं ऐसा निस्सीम वैभव है ॥ ११ ॥ एक जगत का उदय करती है. दूसरी उसका पालन करने में परम दक्षा है तो तीसरी उसका संहार करने में काल रूपा है ऐसी तीनों शक्तियों को सामर्थ्य प्रदान करने वाली आपके श्रीचरण कमल के नख की प्रभा है ऐसी एकमात्र समर्थ आपकी सदा जय हो ॥ १२ ॥ आपके पति की गोद से ब्रह्मा विष्णु महादेव अपनी शक्तियों के समेत प्रकट होते हैं. तथा उनका भी जब तक इच्छा होती है तब तक आपकी कृपा पालन करती है। ऐसी आपकी सदैव जय हो ॥ १३ ॥ आप ही परात्परा शक्ति हैं आप से श्रेष्ठ अन्य कोई परम शक्ति नहीं है, उसी प्रकार आपके पति श्री रघुनाथ जी सबसे परात्पर पूर्ण ब्रह्म परमात्मा हैं, आप में तथा उनमें तत्वतः कोई भेद नहीं है। भेद केवल कहने में तथा आकार में है वस्तुतः राम तथा सीता तत्व दोनों एक ही है ॥ १४ ॥ आपके गुणगणों की मूर्ति हम हो जावें, हमारे प्रथम गुरु श्री रामचन्द्र जी हैं तथा हमारे गुरुमुखी श्री महाशम्भु जी हैं हमारे इस स्तोत्र को श्रवण कर आप हमें कृतार्थ करें। हे श्रीसीतारामजी ! हमने यह बड़ा भारी साहस करके आपकी प्रार्थना की है ॥ १५ ॥

श्री याज्ञवल्क्य जी ने कहा:—

इस प्रकार महाविष्णु तथा महा शम्भु ने श्री किशोरी जू की स्तुति की तब उनके प्रति उनकी प्रसंसा करती हुई श्रीजानकीजी ने कल्याण प्रद वचन कहा ॥ १६ ॥

"यह श्री स्वामी जनकराज किशोरी शरणजी श्री रसक अली विरचित 'अमर रामायणान्तर्गत' श्रीजानकी जयति स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ।"

॥ श्रीजानकी प्रार्थना स्तोत्रम् ॥

श्रीसूत-उवाच—

दर्शनार्थं ययौ सीता रमापादस्य वै मुनेः । नूपुराणां ध्वनिश्रुत्वा नेत्रे चोन्मील्य योगिराट् ॥

ददर्शाग्रे महातेजा रामं नारायणं हरिम् । सीतां लक्ष्मीं ततो दृष्ट्वा प्रणनाम मुनीश्वरः ॥

प्रणतः पूजितस्ताभ्यां सीतया राघवेण च । तुष्टाव जानकीं देवीं प्रणम्य शिरसा मुनिः ॥

श्रीरमापाद उवाच—

जयत्वं पद्मपत्राक्षि जयत्वं राघव प्रिये । जगन्मातर्महालक्ष्मि संसारार्णवतारिणी ॥४॥

महादेवि नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि । रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ॥५॥

पद्मालये नमस्तुभ्यं नमस्ते राघवप्रिये । जगन्मातर्नस्तुभ्यं कृपावति नमोऽस्तुते ॥ ॥६॥

दयावति नमस्तुभ्यं नमो विश्वेश्वरप्रिये । नमः क्षीरार्णवसुते नमस्त्रैलोक्य धारिणि ॥७॥

विश्वेश्वरि नमस्तुभ्यं रक्षमां शरणागतम् । रक्ष त्वं देवदेवेशि देवदेवेशवल्लभे ॥८॥

दरिद्रात्त्राहि मां देवि कृपां कृत्वा ममोपरि । नमस्त्रैलोक्यजननि नमस्त्रैलोक्यपावनि ॥९॥

ब्रह्मादयो नमंति त्वां जगदानन्ददायिनि । रामप्रिये नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं जगद्धिते ॥१०॥

आर्तिहरे नमस्तुभ्यं समृद्धिं कुरु ते नमः । अब्जवासे नमस्तुभ्यं चपलायै नमोनमः ॥११॥

नमस्ते शीघ्रगामिन्यै चपलायै नमो नमः । परिपालय मां मातर्दासं मां शरणागतम् ॥१२॥

शरणं त्वां प्रपन्नोऽस्मि कमले कमलानने । त्राहि त्राहि महादेवि परित्राणपरायणे ॥१३॥

किं बहूक्तेन भोसीते नमस्तेऽस्तु पुनः पुनः । अन्यं मे शरणं नास्ति त्वमेव शरणंमम ॥१४॥

सीतोवाच—

यत्त्वयोक्तमिदंपुण्यं ये पठिष्यन्ति मानवाः । श्रोष्यन्ति ये महाभक्त्या तेभ्यो दास्यामि सम्पदम् ॥

यः पठेत्प्रातरुत्थाय श्रद्धा भक्तिसमन्वितः । सुखसौभाग्यसम्पन्नो बुद्धिमानृद्धिवान्भवेत् ॥

पुत्रवान् गुणवान् श्रेष्ठो भोक्ता भवति मानवः । इदं स्तोत्रं महत्पुण्यं महादारिद्र्यनाशनम् ॥

क्षिप्रंप्रसादजननं चतुर्वर्गफल प्रदम् । सत्यं सत्यं पुनः सत्यं न देयं प्राकृते जने ।

इत्थं वरांस्तु मुनये दत्वा रामेण संयुता ॥१८॥

॥ इति श्रीसत्योपाख्यान रामायणे उत्तरार्द्धे चतुर्विंशोऽध्यायान्तर्गत श्रीजानकी प्रार्थनास्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

॥ श्रीजनकी प्रार्थना स्तोत्रम् ॥

श्रीसूतजी ने कहा:—

श्रीरमापाद महर्षि के दर्शनार्थ जब श्री जानकी जी गईं तब उनके श्रीचरण नूपुरों की ध्वनि सुनकर योगिराज ने अपने नेत्र खोले तो अपने सम्मुख महान् तेजस्वी नारायण स्वरूप श्रीहरि भगवान् श्री रामचन्द्र जी को तथा महालक्ष्मी श्रीसीताजी को देखकर मुनीश्वर श्रीरमापादजी ने श्रीयुगल प्रभु के चरणों में प्रणाम किया। उसी प्रकार श्रीसीता–रामजी के द्वारा भी पूजित हुए तथा उन्होंने भी मुनि के चरणों में प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीजानकी देवी के चरणों में सिर झुका कर प्रणाम कर श्रीरमापाद मुनि उन्हें प्रसन्न करने के लिये स्तुति करने लगे ॥ १–२–३ ॥

हे कमल दल लोचनी आपका जय हो, श्रीराघव प्रिया जू का जय हो, जगन्माता–महालक्ष्मी संसार सागर से तारने वाली आपका जय हो ॥ ४ ॥ हे महादेवि ! हे सुरेश्वरि ! आपको नमस्कार है ॥ ५ ॥ हे कमल वासिनि ! हे श्रीराघव प्रिये मैं आपको प्रणाम करता हूँ। हे कृपा निधान जगन्माता मैं आपको नमस्कार करता हूँ ॥ ६ ॥ हे दयावती ! हे विश्वेश्वर प्रिये। आपको मैं प्रणाम करता हूँ। हे क्षीर सागर कन्ये ! त्रैलोक्य को धारण करने वाली मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ ७ ॥ हे विश्वेश्वरि ! मैं आपका शरणागत हूँ आप मेरी रक्षा करिये। हे देव देवेश्वरि ! हे देव देवेश प्राणवल्लभे ! आप मेरी रक्षा करिये ॥ ८ ॥ मुझ पर कृपा करके दरिद्रता से आप मेरी रक्षा करिये। हे त्रैलोक्य माता ! हे त्रैलोक्य पावनी ! आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ ९ ॥

हे जगत् को परमानन्द प्रदान करने वाली श्रीरामप्रिया जू ! ब्रह्मादि देवगण आपके श्री चरणों में प्रणाम करते हैं ऐसी जगत् की हित कारिणी मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥ १० ॥ हे दुःख हारिणी आपको नमस्कार करता हूँ आप मुझे समृद्धिवान् बनाइये। हे कमल निवासिनी हे चपले ! आपको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ११ ॥ हे शीघ्र गामिनी ! हे विद्युद्वर्णिनी ! आपको नमस्कार है, हे माता ! इस शरणागत दास का आप कृपा कर प्रतिपालन करिये ॥ १२ ॥ हे कमले ! हे कमलमुखी ! हे महादेवी ! शरणागतों की रक्षा करने में सदा परायण रहने वाली मैं आपका शरणागत प्रपन्न हूँ। हे श्रीसीते मैं अधिक क्या कहूँ ! मेरा और कोई रक्षक नहीं है मैं तो केवल आपका ही शरणागत हूँ, आपका ही आधार हैं, मैं आपको पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥ १३–१४ ॥

श्रीजानकीजी ने कहा:—

हे श्रीरमापाद मुने ! यह जो आपने मेरा स्तोत्र पाठ किया है इसको महान् भक्ति पूर्वक जो कोई मनुष्य पढ़ेंगे अथवा श्रद्धा सहित सुनेंगे उनको मैं कृपा करके सम्पत्ति प्रदान करूँगी ॥ १५ ॥ जो प्रातः काल उठकर श्रद्धा भक्ति पूर्वक पाठ करेगा वह बुद्धिमान् ऋद्धि सिद्धि सम्पन्न

सौभाग्यशाली बनकर सुख भोगेगा ॥ १६ ॥ पुत्रवान्-गुणवान्-श्रेष्ठ तथा आनन्द का भोक्ता बनेगा। यह स्तोत्र महान् पुण्य वर्धक तथा महान् दुःख दारिद्र्य का नाश करने वाला है ॥ १७ ॥ यह शीघ्र ही प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला अर्थ-धर्म-काम-मोक्ष प्रदायक है, यह मैं सत्य-सत्य पुनः सत्य बात कहती हूँ, इसे साधारण प्राकृत मनुष्य को कभी नहीं देना चाहिये। ऐसा वरदान देकर श्रीरामजी के सहित श्रीजानकीजी ने प्रस्थान किया ॥ १८-१९ ॥

"इस प्रकार श्री सत्योपाख्यान रामायण के उत्तरार्द्ध के चौबीसवें अध्याय के अन्तर्गत यह श्रीरमापाद मुनि प्रणीत श्रीजानकी प्रार्थना स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ।"

एक प्रार्थना

न मन्त्रं नो यन्त्रं तदपि च न जाने स्तुतिमहो-
न चाह्वानं ध्यानं तदपि च न जाने स्तुतिकथा।
न जाने मुद्रास्ते तदपि च न जाने विलपनं-
परं जाने मातस्त्वदनुशरणं क्लेश हरणम् ॥

जगन्मातर्मातस्तव चरणसेवा न रचिता-
न वा दत्तं देवि द्रविणमपि भूयस्तव मया।
तथापि त्वं स्नेहं मयि निरुपमं यत्प्रकुरुषे।
कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ॥

—देव्यपराध क्षमापन स्तोत्रम्।

हे माता! मैं न तो मन्त्र जानता हूँ न यन्त्र, न स्तुति करना जानता हूँ न आवाहन, न ध्यान जानता हूं न स्तोत्र पाठ, न मुद्रा जानता हूँ और न विलाप करना। परन्तु हे मैया! मैं तो सर्व क्लेश हरण करने वाला एकमात्र आपके चरणों के पीछे पीछे चलना जानता हूँ ॥ हे जगदम्बे! मैंने कभी न तो आपके श्रीचरणों की सेवा की है और न आपने मुझको इतना धन ही दिया है जो आपकी सेवा में आड़े हाथ लुटाऊं। तथापि आप जो मेरे जैसे दीन-हीन पर अनुपम कृपा स्नेह करती हो उसका तो एक कारण है कि पूत तो कपूत होता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती ॥

श्रीजानकी सहस्रनाम

श्रीकविरुवाच—

नीलेन्दीवरलोचनां जनकजां विस्मेरविम्बाधरां ब्रह्माविष्णुमहेशसेव्यचरणां दीव्यत्सुवर्णप्रभाम् ।
सव्ये श्रीमिथिलेशितुः सुनयनाक्रोडे मुदा राजितां वन्दे वन्धुगणान्वितामनुचरीवृन्दैः समाराधिताम् ॥

अकल्पाऽकल्मषाऽकामा अकायाऽकारचर्चिता । अकारणाऽकोपपूज्या अक्रूरैकाऽक्षणाऽक्षरा ॥
अगदाऽगुणाऽग्रगण्या अचलापुत्रिकाऽचला । अच्युताऽजाऽजेयबुद्धिरज्ञातगतिसत्तमा ॥
अणोरणीयस्यतर्क्या अतीन्द्रियचयाऽतुला । अदभ्रमहिमाऽदृश्या अद्वितीयक्षमानिधिः ॥
अद्वितीयदयामूर्त्तिरद्वितीयानहङ्कृतिः । अदीनबुद्धिरद्वैता अधृताऽधोक्षजाऽनघा ॥
अनन्तविग्रहाऽनन्ता अनन्तैश्वर्यसंयुता । अनन्यभावसन्तुष्टा अनर्थौघनिवारिणी ॥
अनवद्यऽनामरूपा अनिर्देश्यस्वरूपिणी । अनिर्वाच्यसुखाम्भोधिरनिर्वाच्याङ्घ्रिमार्दवा ॥
अनिर्विण्णाऽनुकूलैका अनुकम्प्यैकविग्रहा । अनुत्तमाऽनुत्तमात्मा अनुरागभराश्रिता ॥
अपारमहिमाऽपारभववारिधितारिणी । अपूर्वचरिताऽपूर्वसिद्धान्ताऽपूर्वसौभगा ॥
अप्रकृष्टाऽप्रतिद्वन्द्वविक्रमाऽप्रतिमद्युतिः । अप्रतिमाऽप्रमत्तात्मा अप्रमेयसुखाकृतिः ॥
अप्राकृतगुणैश्वर्यविश्वमोहनविग्रहा । अभिवाद्याऽमलाऽमाना अमिताऽमृतरूपिणी ॥
अमृताऽमृतदृष्टिश्च अमृताशाऽमृतोद्भवा । अयोनिसम्भवाऽरौद्रा अलोलाऽवनिपुत्रिका ॥
अवराऽवर्ण्यमाधुर्य्या अवर्ण्यकरुणावधिः । अविचिन्त्याऽविशिष्टात्मा अव्यक्ताऽव्ययशेमुषी ॥
अव्याजकरुणामूर्त्तिरशोकाऽसङ्कुचकाऽसमा । असम्मिताऽऽसङ्कल्पा आत्मज्ञानविभाकरी ॥
आत्मोद्भवाऽऽत्ममर्मज्ञा आत्मलाभप्रदायिनी । आत्मवत्त्यादिकर्त्र्यादिराधारपरमालया ॥
आध्येयाङ्घ्रिसरोजाङ्का आनन्दामृतवर्द्धिनी । आम्नायवेद्यचरणा आश्रितत्राणतत्परा ॥
आसक्त्यपहृताशक्तिरास्यस्पर्द्धिविधुव्रजा । आह्लादसुषमासिन्धुरिनवंश्यपरप्रिया ॥
इन्दुपूर्णोल्लसद्वक्त्रा इभराजसुतागतिः । इयत्त्वरहितैर्वाल्वी प्रपन्नसकलापदाम् ॥
इष्टा समस्तदेवानामीप्सितार्थप्रदायिनी । ईश्वरी सर्वलोकानामुच्छिन्नाश्रितसंशया ॥
उज्ज्वलैकसमाराध्या उत्फुल्लेन्दीवरेक्षणा । उत्तरोत्तानहस्ताब्जा उत्तमोत्सङ्गभूषणा ॥
उदारकीर्त्तनोदारचरितोदारवन्दना । उदारजपपाठेज्या उदारध्यानसंस्तवा ॥२१॥

उदारवल्लभोदार वीक्षणास्मितभाषिता । उदार श्रीनामरूपलीलाधामगुणाव्रजा ॥२२॥
उदारालिगणोदारोपासका ऋतरूपिणी । ऋभुवन्द्याङ्घ्रिऋकारा लृपुत्री लृस्वरूपिणी ॥२३॥
एकैकशरणं पुंसामैक्यभावप्रसादिता । श्रोकःप्रधानिकौजोऽब्धिरौदार्यौत्कर्ष्यविश्रुता ॥२४॥
कमला कमलाराध्या करणं कलभाषिणी । कलाधारा कलाभिज्ञा कलामूर्त्तिः कलावधिः ॥२५॥
कल्पवृक्षाश्रया कल्प्या कल्मषौघनिवारिणी । कल्याणदात्री कल्याणप्रकृतिः कामचारिणी ॥२६॥
कामदा काम्यसंसक्तिः कारणाद्वयकारणम् । कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कालचक्रप्रवर्तिका ॥२७॥
कीनाशभयमूलघ्नी कुञ्जकेलिसुखप्रदा । कुञ्जराधीशगतिका कृतज्ञार्च्या कृतागमा ॥२८॥
कृपापीयूषजलधिः कोमलार्च्चपदाम्बुजा । कौशल्याप्रतिमाम्भोधिः कौशल्यासुतवल्लभा ॥२९॥
खरारिहृदयातुल्यपरमोत्सवरूपिणी । खलान्यमतिसन्दात्री खवासीशादिवन्दिता ॥३०॥
खेलमात्रजगत्सृष्टिर्गणनाथार्च्चिता गतिः । गतैश्वर्यस्मयश्रेष्ठा गभीरा गम्यभावना ॥३१॥
गहनाग्रचा गीर्गीर्वाणहितसाधनतत्परा । गुप्ता महेशया गुह्या गेयोदारयशस्ततिः ॥३२॥
गोपनीयपदासक्तिर्गोप्त्री गोविंदनुत्तमा । ग्रहणीयशुभादर्शा ग्लौपुञ्जाभनखच्छविः ॥३३॥
घनश्यामात्मनिलया घर्मद्युतिकुलस्नुषा । घृणालुका ङस्वरूपा चतुरात्मा चतुर्गतिः ॥३४॥
चतुर्भावा चतुर्व्यूहा चतुर्वर्गप्रदायिनी । चतुर्वेदविदां श्रेष्ठा चपलासत्कृतद्युतिः ॥३५॥
चन्द्रकलासमाराध्या चन्द्रविम्बोपमानना । चारुशीलादिभिः सेव्या चारुसंपावनास्मिता ॥३६॥
चारूरूपगुणोपेता चारुस्मरणमङ्गला । चार्वङ्गी चिदलङ्कारा चिदानन्दस्वरूपिणी ॥३७॥
छविच्छन्धरतिः छिन्नप्रणताशेषसंशया । जगत्क्षेमविधानज्ञा जगत्सेतुनिवन्धिनी ॥३८॥
जगदादिर्जगदात्मप्रेयसी जगदात्मिका । जगदालयवृन्देशी जगदालयसङ्घसूः ॥३९॥
जगदुद्भवादिकर्त्री जगदेकपरायणम् । जगनेत्री जगन्माता जगन्माङ्गल्यमङ्गला ॥४०॥
जगन्मोहनमाधुर्यमनोमोहनविग्रहा । जतुशोभिपदाम्भोजा जनकानन्दवर्द्धिनी ॥४१॥
जनकल्याणसक्तात्मा जननी सर्वदेहिनाम् । जननीहृदयानन्दा जनबाधानिवारिणी ॥४२॥
जयसन्तापशमनी जनित्री सुखसम्पदाम् । जनेश्वरेज्या जन्मान्तत्रासनिर्णाशचिन्तना ॥४३॥
जपनीया जयघोपाराध्यमाना जयप्रदा । जया जयावहा जन्मजरामृत्युभयातिगा ॥४४॥
जलकेलिमहाप्राज्ञा जलजासनवन्दिता । जलजारुणहस्ताङ्घ्रिर्जलजायतलोचना ॥४५॥
जवानतमनोवेगा जाड्यध्वान्तनिवारिणी । जानकी जितमायैका जितामित्रा जितच्छविः ॥४६॥
जितद्वन्द्वा जितामर्षा जीवमुक्तिप्रदायिनी । जीवानां परमाराध्या जीवेशी जेतृसद्गतिः ॥४७॥

जेत्री ज्ञानदा ज्ञानपाथोधिर्ज्ञानिनां गतिः । ज्ञेयाऽऽत्महितकामानां ज्येष्ठा ज्योत्स्नाधिपानना॥
ज्वरातिगा ज्वलत्कान्तिर्ज्वालामालासमाकुला । झणन्नूपुरपादाब्जा झम्पाकेशप्रसादिता ॥
झषकेतुप्रियायूथसञ्चितच्छबिमोहिनी । झाटवाटोत्सवाधारा ञरूपा टुगट्टकेतरा ॥
ठात्मिका डम्बरोत्कृष्टा ढामराधीशगामिनी । ढुण्ढीष्टदेवता ढक्कामञ्जुनादप्रहर्षिता ॥
णकारा तडिदोघाभदीप्ताङ्गी तत्वरूपिणी । तत्वकुशला तत्वात्मा तत्वादिस्तनुमध्यमा ॥
तन्तुप्रवर्द्धिनी तन्वी तपनीयनिभद्युतिः । तपोमूर्त्तिस्तपोवासा तमसः परतः परा ॥
तमोघ्नी तापशमनी तारिणी तुष्टमानसा । तुष्टिप्रदायिका तृप्ता तृप्तिस्तृप्त्येककारिणी॥
तेजः स्वरूपिणी तेजोवृषा तोयभवार्चिता । त्रिकालज्ञा त्रिलोकेशी थै थै शब्दप्रमोदिनी ॥
दक्षा दनुजदर्पघ्नी दमिताश्रितकण्टका । दम्भादिमलमूलघ्नी दयार्द्राक्षी दयामयी ॥
दशस्यन्दनजश्रेष्ठा दाक्षिण्याखिलपूजिता । दान्ता दारिद्र्यशमनी दिव्यध्येयशुभाकृतिः ॥
दिव्यात्मा दिव्यचरिता दिव्योदारगुणान्विता । दिव्या दिव्यात्मविभवा दीनोद्धरणतत्परा ॥
दीप्ताङ्गी दीप्तमहिमा दीप्यमानमुखाम्बुजा । दुरासदा दुराराध्या दुरितघ्नी दुर्मर्षणा ॥
दुर्ज्ञेया दुष्प्रकृतिघ्नी दुःस्वप्नादिप्रणाशिनी । द्युतिर्द्युतिमती देवचूडामणिप्रभुप्रिया ॥
देवताहितदा दैन्यभावार्चिरसुतोषिता । धराकन्या धरानन्दा धरामोदविवर्धिनी ॥
धरारत्नं धर्मनिधिर्धर्मं सेतुनिबन्धिनी । धर्मशास्त्रानुगा धामपरिभूततडिद्द्युतिः ॥
धृतिर्ध्रुवा नीतिप्रीता नयशास्त्रविशारदा । नामनिर्धूतनिरया निगमान्तप्रतिष्ठिता ॥
निगमैर्गीतचरिता नित्यमुक्तनिषेविता । निधिर्निमिकुलोत्तंसा निर्मित्तज्ञानिसत्तमा ॥
नियतेन्द्रियसम्भाव्या नियतात्मा निरञ्जना । निराकारा निरातङ्का निराधारा निरामया ॥
निर्व्याजकरुणामूर्त्तिर्नीतिः पङ्केरुहेक्षणा । पतितोद्धारिणी पद्मगन्धेष्टा पद्मजार्चिता ॥
पद्मपादा पद्मवक्त्रा पद्मिनी परमेश्वरी । परब्रह्म परस्पष्टा पराशक्तिः परिग्रहा ॥
परित्रात्री परिश्लाध्या परेष्टा पर्यवस्तिा । पवित्रं पाटवाधारा पातिव्रत्यधुरन्धरा ॥
पापिपापौघसंहर्त्री पारिजातसुमार्चिता । पावनानुत्तमादर्शा पावनी पुण्यदर्शना ॥
पुण्यश्रवणचरिता पुण्यश्लोकवरीयसी । पुष्पालङ्कारसम्पन्ना पुष्टिः पुष्टिप्रदायिनी ॥
पूतात्मा पूतसर्वेहा पूज्यपादाम्बुजद्वया । पूर्णा पूर्णेन्दुवदना प्रकृतिः प्रकृतेः परा ॥
प्रकृष्टात्मा प्रणम्याङ्घ्रिः प्रणयातिशयप्रिया । प्रणतातुल्यवात्सल्या प्रणतध्वस्तसंसृतिः ॥
प्रणविनो प्रतिष्ठात्री प्रथमा प्रथिता प्रधीः । प्रपन्नरक्षणोद्योगा प्रवित्तं प्रविशारदा ॥

प्रह्वी प्राणप्रदा प्राणनिलया प्राणवल्लभा । प्राणात्मिका प्रार्थनीया प्रियमोहनदर्शना ॥
प्रियार्हा प्रीतितत्वज्ञा प्रीतिदा प्रीतिवर्धिनी । प्रेज्या प्रेमरता प्रेमवल्लभातीवल्लभा ॥
प्रेमवारां निधिः प्रेमविग्रहा प्रेमवैभवा । प्रेमशक्त्येकविवशा प्रेमसंसाध्यदर्शना ॥
प्रेमैकहाटकागारा प्रेमैकाङ्कनविग्रहा । फणीन्द्रावर्ण्यविभवा फलरूपा शुभकर्मणाम् ॥
बुद्धिदा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः । ब्रह्मलेखातिगा ब्रह्मवेत्त्री ब्रह्माण्डवृन्दसूः ॥
भक्तत्राणविधानज्ञा भक्तिसंसाध्यदर्शना । भजनीयगुणोपेता भयघ्नी भवतारिणी ॥
भवपूज्या भवाराध्या भवोत्पत्त्यादिकारिणी । भाग्यैकसंशोधयित्री भावैकपरितोषिता ॥
भूतप्रसूतिर्भूतात्मा भूतादिर्भूतिदायिनी । भूतिमत्समुपास्याङ्घ्रिर्भूसुता भ्रान्तिहारिणी ॥
मङ्गलाशेषमाङ्गल्या मङ्गलैकमहानिधिः । मधुरा मधुराकारा मननीयगुणावलिः ॥
मनोजवा मनोज्ञाङ्गी मनोरमगुणान्विता । मनः स्वरूपा महती महनीयगुणाम्बुधिः ॥
महद्धर्चका महाकीर्तिर्महाकोशा महाक्रतुः । महाक्रमा महागर्ता महाछविर्महाद्युतिः ॥
महादृष्टिर्महाधाम्नी महानन्दस्वरूपिणी । महानायकसम्मान्या महानैपुण्यवारिधिः ॥
महापूज्या महाप्राज्ञा महाप्रेज्या महाफला । महाभागा महाभोगा महामतिमतां वरा ॥
महामाधुर्यसम्पन्ना महामायास्वरूपिणी । महायोगप्रसाध्यैका महायोगेश्वरप्रिया ॥
महारतिर्महालक्ष्मीर्महाविद्यास्वरूपिणी । महाशक्तिर्महाश्रेष्ठा महाश्लाघ्ययशोऽन्विता ॥
महासिद्धिर्महासेव्या महासौभाग्यदायिनी । महाहविर्महार्हार्हा महिष्ठात्मा महीयसी ॥
महीशजा महोत्कर्षा महोत्साहा महोदया । महोदारा महेशादिसमालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥
माता समस्त जगतां माधुरीजितमाधुरी । मान्यापरमसम्मान्या मा मितकोकिलस्वना ॥
मिथिलेशक्रतूद्भूता मिथिलेश्वरनन्दिनी । मीनाक्षी मुक्तिवरदा मुनिसेव्यपदाम्बुजा ॥
मुनीन्द्रावर्ण्यमहिमा मूलप्रकृतिसंज्ञिता । मृगनेत्रा मृगाङ्काभवदना मृदुभाषिणी ॥
मृदुला मृदुलाचारा मृदुसंमोहनेक्षणा । मृदुस्वभावसम्पना मृद्वी मेधसमुद्भवा ॥
मेधेशी मैथिली मोदवर्षिणी मौढ्यभञ्जिका । यतचित्तेन्द्रियग्रामा युक्ता युक्तात्यभाषिता ॥
योगदा योगनिलया योगस्था योगिनां गतिः । योगिभिः समुपालम्ब्या योगिराजप्रियात्मजा ॥
रक्तोत्पललसद्धस्ता रघुनन्दनवल्लभा । रघुनाथस्वभावज्ञा रघुवीरसुखेरता ॥
रतिसौन्दर्यदर्पघ्नी रतीशेहाहरस्मृतिः । रविमण्डलमध्यस्था रविवंशेन्दुहृत्स्थिता ॥
रसज्ञा रसभावज्ञा रसानन्दविवर्धिनी । रमणीयगुणव्राता रमाराध्या रमालया ॥

रम्यरम्यनिधीं रम्याशेषा रसमयाकृतिः । रसापुत्री रसासक्ता रसिकानां परागतिः ॥१००॥
रसिकेन्द्रप्रिया राकाधिपपुञ्जनिभानना । राघवेन्द्रप्रभाज्ञा राधा रासरसेश्वरी ॥१०१॥
रासलीलाकलापज्ञा रासानन्दप्रदायिनी । रासेशी रूपदाक्षिण्यमण्डिता लक्ष्मणार्च्चिता ॥
ललनादर्शचरिता ललनाधर्मदीपिका । ललामैकनामरूपलीलाधामगुणादिका ॥१०३॥
ललिताम्भोजपत्राक्षी ललिताशेषचेष्टिता । लावण्यजितपाथोधिर्लाकृतिर्लीनरक्षिका ॥१०४॥
लीलाभूमाधवप्रेष्ठा लोककल्याणतत्परा । लोकत्रयमहाराज्ञीलोकमृग्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥१०५॥
लोकज्ञा लोकशरणं लोकपावनपावनी । लोकप्रगीतमहिमा लोकानुत्तमदर्शना ॥१०६॥
लोकालयकलापाम्बा लोकोत्पत्यादिकारिणी । लोकेशकान्ता लोकेशी लोकैकप्रियकाङ्क्षिणी ॥
लोचनादीन्द्रियव्रातशक्तिसञ्चारकारिणी । लोपयित्री लोभहरा लोमशादिकभाविता ॥
वत्सरा वत्सलोत्कृष्टा वदान्या वनजेक्षणा । वनमालाश्रिता वभ्री वरणीयपदाश्रया ॥
वरदाधिराजकान्ता वरदा वरवर्णिनी । वरबोधा वरारोहाभूषिता वर्णनातिगा ॥११०॥
वर्णमाता वर्णश्रेष्ठा वर्णाश्रमविधायिनी । वर्ण्यानवद्यचित्केलिर्वर्द्धिनी सुखसम्पदाम् ॥१११॥
वशकृद्वशगश्रेष्ठा वश्या वसुप्रदायिनी । बहुश्रुतो वाच्यकीर्त्तिर्वाजिासनवन्दिता ॥११२॥
विकल्मषा विक्षरात्मा विगतेहा विजेतृका । विज्ञानदात्री विज्ञानमयाप्राकृतविग्रहा ॥११३॥
विज्ञा विज्वरा विदिता विदिशा विद्ययाऽन्विता । विद्यावत्पुञ्जवोत्कृष्टा विधात्री विधिकेतना ॥
विधिदुर्ज्ञेयमहिमा विधुपूर्णमुखाम्बुजा । विनयार्हा विनीतात्मा विपक्वात्मा विपद्धरा ॥
विमत्सरा विमलार्च्या विमुक्तात्मा विमुक्तिदा । विमोहिनी वियन्मूर्त्तिर्विरतिप्रदचिन्तना ॥
विरामा विलसत्कान्तिर्विबुधर्षिगणार्चिता । विवेकपरमाधारा विवेकवदुपासिता ॥११७॥
विशदश्लोकसम्पूज्या विशालेन्दीवरेक्षणा । विशिष्टात्मा विशेषज्ञा विश्वलीलाप्रसारिणी ॥
विश्वतः पाणिपादास्या विश्वमात्रैकधारिणी । विश्वम्भरा विश्वात्मा विश्वालयव्रजेश्वरी ॥
विश्वासरूपा विश्वेषां साक्षिणी विस्तृतोत्तमा । वीणावाणी वीतभ्रान्ति वीतरागस्मयादिका ॥
वीतशङ्कसमाराध्या वीतसम्पूर्णसाध्वसा । बुधाराध्याङ्घ्रिकमला वृषपा वेदकारणम् ॥
वेदगा वेदनिःश्वासा वेदप्रणुतवैभवा । वेदप्रतिपाद्यतत्वा वेदवेदान्तकोविदा ॥१२२॥
वेदरक्षाविधानज्ञा वेदसारमयाकृतिः । वेदान्तवेद्या वेदान्ता वैदेही वैभवार्णवा ॥१२३॥
वङ्कचिकुरा वङ्कभ्रूर्वङ्काकर्षणवीक्षणा । शक्तिव्रजेश्वरी शक्तिः शतमूर्त्तिः शतोदिता ॥१२४॥
शब्दब्रह्मातिगा शब्दविग्रहा शमदायिनी । शमिताश्रितसंक्लेशा शमिभक्त्याशुतोषिता ॥

शम्पादामोल्लसत्कान्तिः शम्प्रदध्यानसंस्तवा । शम्मयाशेषकैङ्कर्य्या शरणं सर्वदेहिनाम् ॥
शरणागतसंत्रात्री शरणैकाऽसुधारिणाम् । शवरीमानदप्रेष्ठा शान्ता शान्तिप्रदायिनी ॥
शाश्वतचिन्तनीयाङ्घ्रिकमला शाश्वतस्थिरा । शाश्वती शासिकोत्कृष्टा शिरोधार्यकराम्बुजा ॥
शिशिरा शीलसम्पन्ना शुचिगम्याङ्घ्रिचिन्तना । शुचिप्राप्यपदासक्तिः शुद्धान्तःकरणालया ॥
शुद्धा शुद्धिप्रदध्याना शूलत्रयनिवारिणी । शैलराजसुतादीष्टा शोभासागरसत्कृता ॥
शौर्यपाथोनिधिः श्यामा श्रयणीयपदाम्बुजा । श्रवणीययशोगाथा श्रीकरी श्रीप्रदायिनी ॥
श्रीमदुत्संसमहिता श्रीमयी श्रीमहानिधिः । श्रीलक्ष्म्यादिभिः सेव्या श्रीवासा श्रीसमुद्भवा ॥
श्रीः श्रुतिगीतचरिता श्रुत्यन्तप्रतिपादिता । श्रेयोगुणोरणा श्रेयोनिधिः श्रेयोमयस्मृतिः ॥
श्रोत्रियैकसमाराध्या श्लक्ष्णसूनृतभाषिणी । श्लाघनीयमहाकीर्त्तिः श्लीलचारित्र्यविश्रुता ॥
श्लोकलोकार्चिताब्जाङ्घ्रिः श्वसनाधीशसत्कृता । श्वेतधामोल्लसद्वक्त्रा षट्चतुर्वर्गस्त्रिलोदिता ॥
षडतीता षडाधारा षडर्द्धात्महृदिस्थिता । सखीमण्डलमध्यस्था सगुणा संत्रयोज्झिता ॥
सङ्ख्यातीतगुणा सङ्गमुक्ता सङ्गीतकोविदा । सङ्कीर्णप्रणताणा संग्रहोत्सर्जने रता ॥
सख्यशीघ्रसमासाद्या सज्जनोपासिताङ्घ्रिका । सतताराध्यचरणा सतीत्वादर्शदायिनी ॥
सतीवृन्दशिरोरत्नं सतीशाजस्रभाविता । सत्तमा सत्यधर्मैकपालिका सत्यरूपिणी ॥
सत्यसश्चिन्तना सत्यसन्धा सत्यापतिस्नुषा । सत्या सत्रधरागर्भोद्भूता सत्यवदग्रणीः ॥
सदाचारा सदासेव्या सद्दशातीतशेमुषी । सनातनी सनानम्या सन्तोषैकप्रदायिनी ॥
सन्देहापहरा सन्धिः सन्निषेव्यसमाश्रिता । सन्नुत्याशेषचरिता सभ्यलोकसभाजिता ॥
समग्रज्ञानवैराग्यधर्मश्रीयशोनिधिः । समग्रैश्वर्यसम्पन्ना समतीतगुणोपमा ॥
समदृष्टिः समर्च्यैका समर्थाग्रचा समर्धका । समविश्वमनोज्ञाङ्गी समवेद्याङ्घ्रिलाञ्छना ॥
समाकर्ण्ययशोगाथा समाहर्त्री समाहिता । समानात्मा समाराध्या समालम्ब्याङ्घ्रिपङ्कजा ॥
समावर्ता समासेव्या समार्हा समितिञ्जया । समीद्याव्याजकरुणा संविभाव्यसुविग्रहा ॥
सरयूपुलिनाक्रीडा सरला सरसेक्षणा । सर्गस्थित्यन्तप्रभवा सर्वकामप्रदायिनी ॥
सर्वकार्यबुधा सर्वच्छद्मज्ञा सर्वजन्मदा । सर्वजीवहिता सर्वज्ञानिनां ज्ञेयसत्तमा ॥
सर्वज्ञाननिधिः सर्वज्ञानवद्भिरुपासिता । सर्वज्ञा सर्वज्येष्ठादिः सर्वतीर्थमयस्मृतिः ॥
सर्वतोऽत्यास्यहस्ताङ्घ्रिकमला सर्वदर्शना । सर्वदिव्यगुणोपेता सर्वदुःखहरस्मिता ॥
सर्वदेवनुता सर्वधर्मतत्त्वविदां वरा । सर्वधर्मनिधिः सर्वनायकोत्तमनायिका ॥१५१॥

सर्वनीतिरहस्यज्ञा सर्वनैपुण्यमण्डिता । सर्वपापहरध्याना सर्वपावनपावनी ॥
सर्वभक्तावनाभिज्ञा सर्वभक्तिमतां गतिः । सर्वभावपदातीता सर्वभावप्रपूरिका ॥
सर्वभुक्तिप्रदोत्कृष्टा सर्वभूतहिते रता । सर्वभूताशयाभिज्ञा सर्वभूतासुधारिणी ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्या सर्वमण्डनमण्डना । सर्वमेधाविनां श्रेष्ठा सर्वमोदमयेक्षणा ॥
सर्वमोहच्छिदासक्तिः सर्वमोहनमोहिनी । सर्वमौलिमणिश्रेष्ठा सर्वयज्ञफलप्रदा ॥
सर्वव्रतस्नाता सर्वयोगविनिःसृता । सर्वरम्यगुणागारा सर्वलक्षणलक्षिता ॥
सर्वलावण्यजलधिः सर्वलीलाप्रसारिणी । सर्वलोकनमस्कार्या सर्वलोकेश्वरप्रिया ॥
सर्वलोकेश्वरी सर्वलौकिकेतरवैभवा । सर्व विद्याव्रतस्नाता सर्ववैभवकारणम् ॥
सर्वशक्तिमतामिष्टा सर्वशक्तिमहेश्वरी । सर्वशत्रुहरा सर्वशरणं सर्वशर्मदा ॥
सर्वश्रेयस्करी सर्वसहा सर्वसदर्चिता । सर्वसद्भावनाधारा सर्वसद्भावपोषिणी ॥
सर्वसौख्यप्रदा सर्वसौभाग्यैकप्रदायिनी । साकेतपरमस्थाना साकेतपरमोत्सवा ॥
साकेताधिपतिश्रेष्ठा साकेतानन्दवर्षिणी । साक्षाच्छ्रीः साक्षिणी सर्वदेहिनां सर्वकर्मणाम् ॥
साधप्राणिजनारुष्टा सातपत्रोत्तमासना । साधनातीतसम्प्राप्तिः साध्या साध्वीजनप्रिया ॥
सामगा सामगोद्गीता साफल्यैकप्रदायिनी । सामर्थ्यंजगदाधारमोहिनी साम्यदायिनी ॥
सारज्ञा सिद्धसङ्कल्पा सिद्धसेव्यपदाम्बुजा । सिद्धार्था सिद्धिदा सिद्धिरूपिणी सिद्धिसाधनम् ॥
सीता सीमन्तिनीश्रेष्ठा सीरध्वजनृपात्मजा । सुकटाक्षा सुकीर्तीड्या सुकृतीनां महाफला ॥
सुकेशीसुखमूलैका सुखमन्दोहदर्शना । सुगया सुघनज्ञाना सुचार्वी सुजवोत्तमा ॥
सुज्ञा सुतन्वी सुदती, सुदाननिरताश्रया । सुधावाणी सुधीरात्मा सुधीश्रेष्ठा सुवीक्षणा ॥
सुनयनाक्रोडरत्नं सुनयनाप्रपोषिता । सुनयनामहाराज्ञीहृदयानन्दवर्द्धिनी ॥
सुनासा सुनिदिध्यास्या सुनीतिः सुप्रतिष्ठिता । सुप्रसादा सुभगायाः करपल्लवचर्चिता ॥
सुभागा सुभुजा सुभ्रूः सुमुखी सुरपूजिता । सुराध्यक्षा सुरानम्या सुराधीशजरक्षिका ॥
सुरेश्वरी च सुलभा सुवर्णाभाङ्गशोभना । सुवेद्यैका सुशरणं सुश्रीः सुश्लोकसत्तमा ॥
सृष्टदीनर्हितोपाया सृष्टिजन्मादिकारिणी । सेव्या सीरध्वजीज्येष्ठा सोमवत्प्रियदर्शना ॥
सौभाग्यजननी सौम्या स्थानं सर्वसुधारिणाम् । स्थिरा स्थूलदयाचैव स्थूलसूक्ष्मविलक्षणा ॥
स्रष्टृपात्रन्तकर्तॄणामीश्वरी स्वगतिप्रदा । स्वङ्घ्रिका स्वच्छहृदया स्वच्छन्दा स्वजनप्रिया ॥
स्वजनानन्दनिवहा स्वतर्क्या स्वधरस्मिता । स्वधर्माचरणाख्याता स्वधर्मावनपण्डिता ॥

स्वभावस्वरूपा स्वधृता स्वभावाघहरस्मिता । स्वभावापास्तनाशंस्या स्वभावावर्यमार्दवा ॥
स्वभावावाच्यवात्सल्या स्ववशा स्वस्तिदक्षिणा । स्वस्तिदा स्वस्तिरूपा च स्वामिनीसर्वदेहिनाम् ॥
स्वास्या स्वाश्रितसर्वेष्टदायिनी स्विष्टदेवता । स्वेच्छाचारेणरहिता हरिणोत्फुल्ललोचना ॥
हारसम्भूषिता हास्यस्पर्द्धिचन्द्रकरस्रजा । हितैका सर्वजगतां हृदयानन्दवर्द्धिनी ॥१८१॥
हृदयेशी च हृद्यैका हेमागारनिवासिनी । हेमासेव्यपदाम्भोजा हेयपादाब्जविस्मृतिः ॥
ह्लादिनी ह्रीमतांश्रेष्ठा क्षमाध्वस्तधरास्मया । क्षमास्वरूपा क्षमिणां क्षमेशी क्षान्तिविग्रहा ॥
क्षितीशतनया क्षेमदायिनी क्षेमयाऽर्च्चिता । सुता तवैषा कल्याणी सर्वोपास्येति मे मतम् ॥

इयं हि राजन् ! मृगपोतलोचना वागीश्वरीशैलसुतारमादिभिः ।
निषेव्यमाणाङ्घ्रिसरोरुहद्वया विराजते पूर्णसुधाकरानना ॥१८५॥
महामुनीनां यतिपुङ्गवानां योगेश्वराणां सुरसत्तमानाम् ।
सिद्धीश्वराणां त्रिगतैषणानां भोगार्थिनां मोक्षपदेच्छुकानाम् ॥१८६॥
हानीतरौत्सुक्यसमन्वितानां स्वजन्मनो भूमिपतेऽखिलानाम् ।
सम्भावनीया समुपासनीया ज्ञेयाऽनुगेया तनया तवेयम् ॥१८७॥
अनन्तनामानि तवात्मजायाः सन्ति क्षितीशप्रवराद्य तेषाम् ।
मया सहस्रेण मुदा प्रगीता तनोतु शं सेयमयोनिजा नः ॥१८८॥

हे राजन् ! आपकी मृग शिशु के समान सुन्दर नेत्र वाली चन्द्रमुखी ये श्रीललीजी के चरण कमल श्री सरस्वती जी, पार्वतीजी, श्रीलक्ष्मीजी आदि महाशक्तियों के द्वारा पूजित हैं अतः ये सर्वोत्कर्ष को प्राप्त हैं ॥ १८५ ॥ हे राजन् ! कहाँ तक कहें ! जितने भी सकाम, निष्काम, मोक्षाभिलाषी महामुनि, यतिशिरोमणि, योगिराज, देवश्रेष्ठ, सिद्धप्रवर, अपने मानव-जीवन की सफलता चाहने वाले हैं, उन सभी के लिये सब प्रकार से भावना करने योग्य, उपासना करने योग्य, तथा ज्ञान प्राप्त करने योग्य और बारम्बार गान करने योग्य आपकी ये ही श्रीललीजी हैं ॥ १८६-८७ ॥ हे भूमिनाथों में परम श्रेष्ठ श्री मिथिलेश जी महाराज ! आपकी श्रीललीजी के असंख्य नाम हैं उनमें से केवल इस समय मैंने जिनका सहस्र नाम से वर्णन किया है, वे अयोनिसम्भवा अर्थात् अपनी इच्छा से प्रकट हुई आपकी ये श्रीललीजी हम सबों का कल्याण करें ॥ १८८ ॥

भक्त्याऽनुरक्त्या पठतामजस्रं ध्यानान्वितानां तनया धरण्याः ।
दृग्गोचरी वाञ्छितसिद्धिदात्री भूयाद्‌द्रुतं नामसहस्रमेतत् ॥१८९॥

नृणां चतुर्वर्गविलोलचेतसां पाठ्यं ससङ्कल्पमिदं शुभावहम् ।
गिरीन्द्रकन्ये ! मधुराक्षरान्वितं श्रीजानकीनामसहस्रमन्वहम् ॥१९०॥

इति श्रीजानकी चरितामृते श्रीमिथिलेशनवयोगेश्वरसंवादे श्रीजानकीसहस्रनाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

इस सहस्र नाम को ध्यान पूर्वक अनुराग के साथ, नित्य पाठ करने वालों को, अभीष्ट सिद्धि प्रदान करने वाली ये श्रीललीजी शीघ्र ही प्रत्यक्ष दर्शन प्रदान करें ॥ १८९ ॥ भगवान शिवजी बोले:—हे पार्वती ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति के लिये जिनका चित्त चञ्चल हो रहा है उन्हें, मधुर अक्षरों युक्त, मङ्गलकारी इस श्रीजानकी सहस्रनाम का पाठ सङ्कल्प-पूर्वक प्रति दिन करना चाहिये ॥ १९० ॥

"यह श्रीजानकीचरितामृतम् का श्रीमिथिलेश महाराज तथा नव योगेश्वर संवाद में कवि नामक योगेश्वर कथित श्रीजानकी सहस्रनाम स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ।"

श्रीजानकीअष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्

श्रीशिव उवाच—

अष्टोत्तरशतं नाम्नामपीदानीं तदुच्यताम् । भवद्भिः सानुकम्पं मे सर्वज्ञाः श्रुतिमङ्गलम् ॥
साधु पृष्टं त्वया राजन् श्रूयमेकाग्रचेतसा । अष्टोत्तरशतं वक्ष्ये नाम्नां परमपावनम् ॥
सीरध्वजसुता सीता स्वाश्रिताभीष्टदायिनी । सहजानन्दिनी स्तव्या सर्वभूताशयस्थिता ॥
ह्लादिनी क्षेमदा शान्तिः पद्माक्षी हृदिस्थिता । श्रीनिधिः श्रीसमाराध्या श्रियः श्रीः श्रीमदन्विता ॥

श्रीजनकजी महाराज बोले:—हे सर्वज्ञ महर्षियों ! अब आप लोग श्रवण मात्र से मङ्गल करने वाले श्रीललीजी के अष्टोत्तर शतनामों को भी मुझे बतलाने की कृपा करें ॥ १ ॥ श्रीहरि नाम के योगेश्वर बोले:—हे राजन् ! आपका प्रश्न बहुत अच्छा है अतएव मैं श्रीललीजी के परम पावन अष्टोत्तर शतनामों का वर्णन करता हूँ आप उसका एकाग्रचित्त से श्रवण कीजिये ॥ २ ॥ (१) सीरध्वजसुता ❀ श्री सीरध्वज-महाराज के सुख का विस्तार करने वाली । (२) सीता ❀ अपने आश्रित चेतनों के समस्त दुःख शोकों की मूल आसुरी सम्पत्ति का विनाश करके दया, क्षमा, वात्सल्य, सौशील्य आदि दैवी सम्पत्ति के विस्तार द्वारा अनायास संसार सागर से पार उतारने वाली । (३) स्वाश्रिताभीष्टदायिनी ❀ अपने आश्रितों की हितकर इच्छाओं को पूर्ण करने वाली । (४) सहजानन्दिनी ❀ अपने शीलस्वभाव और गुणरूप आदि से सभी जड़ चेतनों

को स्वाभाविक आनन्द प्रदान करने वाली। (५) स्तव्या ❀ सभी के द्वारा सब प्रकार से स्तुति करने योग्या। (६) सर्वभूताशयस्थिता ❀ सम्पूर्ण प्राणियों के हृदयों में निवास करने वाली ॥३॥ (७) ह्लादिनी ❀ सम्पूर्ण चेतनों के हृदय में आह्लाद प्रदान करने वाली। (८) क्षेमदा ❀ कल्याण प्रदान करने वाली। (९) क्षान्ति ❀ सहनशीलता स्वरूपा। (१०) षडर्द्धाक्षहृदिस्थता ❀ त्रिनेत्र धारी (भगवान् शिवजी) के हृदय में निवास करने वाली। (११) श्रीनिधिः ❀ सम्पूर्ण शोभा कान्ति तथा धन की भण्डार स्वरूपा। (१२) श्रीसमाराध्या ❀ श्रीलक्ष्मणजी के द्वारा सम्यक् प्रकार से सेवित होने योग्य। (१३) श्रियः श्रीः ❀ कान्तिकी कान्ति और शोभा की शोभा स्व-रूपा। (१४) श्रीमदर्चिता ❀ तेज और सम्पत्तिशालीब्रह्मादि देव वृन्दों से पूजित ॥ ४ ॥

शरण्या वेदनिःश्वासा वैदेही विबुधेश्वरी। लोकोत्तराम्बा लोकादी रघुनन्दनवल्लभा ॥
रम्यरम्यनिधी रामा योगीश्वरप्रियात्मजा। यज्ञस्वरूपा यज्ञेशी योगिनां परमा गतिः ॥
मृदुस्वभावा मृदुला मैथिली मधुराकृतिः। मनोरूपा महेज्येज्या महासौभाग्यदायिनी ॥
भूमिजा बुधमृग्याङ्घ्रिकमला बोधवारिधिः। फलस्वरूपा तपसां फणीन्द्रावर्यवैभवा ॥

(१५) शरण्या ❀ सभी प्राणियों की सब प्रकार से रक्षा करने में पूर्ण समर्थ। (१६) वेदनिःश्वासा ❀ वेदमय श्वास वाली। (१७) वैदेही ❀ श्रीविदेहकुल की सर्वोत्कृष्ट राजदुलारी। (१८) विबुधेश्वरी ❀ ब्रह्मा, विष्णु, महेश, अग्नि, सूर्य, पवन, यम, कुबेर, इन्द्रादि सभी देवताओं पर शासन करने वाली। (१९) लोकोत्तराम्बा ❀ सम्पूर्ण प्राणियों की अपाञ्चभौतिक (दिव्य) माता। (२०) लोकादिः ❀ समस्त लोकों की कारण स्वरूपा। (२१) रघुनन्दनवल्लभा ❀ रघुकुल को वात्सल्य जनित आनन्द-प्रदान करने-वाले भगवान् श्रीरामजी की परम प्यारी ॥ ५ ॥ (२२) रम्यरम्यनिधिः ❀ सभी सुन्दरों में सुन्दर (भगवान् श्रीराघवेन्द्र सरकार) की निधि (भण्डार) स्वरूपा। (२३) रामा ❀ आकाश तत्व से, सहस्रों गुणा अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण सम्पूर्ण प्राणियों को अपनी गोद में खेलाने वाली और स्वयं विविध प्रकार के स्थूल सूक्ष्मादि रूपों के द्वारा सबके साथ खेलने वाली भगवान् श्रीरामजी की प्राणवल्लभा। (२४) योगीश्वरप्रियात्मजा ❀ योगियों पर शासन करने वाले श्रीमिथिलेश जी महाराज की प्यारी पुत्री। (२५) यज्ञस्वरूपा ❀ यज्ञ स्वरूप वाली। (२६) यज्ञेशी ❀ समस्त यज्ञों की रक्षा करने वाली। (२७) योगिनां परमा गतिः ❀ भगवत् प्राप्ति के साधकों का सब प्रकार से सम्हाल करने वाली ॥ ६ ॥ (२८) मृदु स्वभावा ❀ अत्यन्त कोमल स्वभाव वाली। (२९) मृदुला ❀ कोमल स्वभाव तथा अति कोमल अङ्गों वाली। (३०) मैथिली ❀ मिथिवंश में सबसे अधिक प्रख्यात श्रीमिथिलेश राजदुलारी जी। (३१) मधुराकृतिः ❀ अत्यन्त मनोहर तथा सर्वानन्द प्रदायक सुन्दर स्वरूप वाली। (३२) मनोरूपा ❀ मनके स्वरूप वाली। (३३) महेज्येज्या ❀ महान् पूजनीय श्रीब्रह्मा, विष्णु, महेशादि देव तथा उमा, रमा ब्रह्माणी आदि महाशक्तियों के द्वारा भी पूजने योग्य। (३४) महासौभाग्यदायिनी ❀ भक्तों को सर्वोत्तम सौभाग्य प्रदान करने वाली ॥ ७ ॥ (३५) भूमिजा ❀ पृथ्वी से प्रकट होने

वाली श्रीमिथिलेश राजदुलारी जी । (३६) बुधमृग्याङ्घ्रिकमला ❀ ज्ञानियों के खोजने योग्य जिनके एक श्रीचरण कमल ही हैं । (३७) बोधवारिधिः ❀ समुद्र के समान अथाह ज्ञान वाली । (३९) फणीन्द्रवर्ण्यवैभवा ❀ सहस्र मुख, (दो हजार जिह्वा) वाले श्रीशेषजी द्वारा भी जिनका ऐश्वर्य वर्णन करने में असम्भव ॥ ८ ॥

नमस्या प्रियदृष्टिश्च धरारत्नं धरासुता । दिव्यात्मा दीप्तमहिमा तत्त्वात्मा जनकात्मजा ॥
जगदीशपरप्रेष्ठा ज्ञानिनां परमायनम् । जगन्मङ्गलमाङ्गल्या जरामृत्युभयातिगा ॥
चन्द्रकलासुखासाध्या चिदानन्दस्वरूपिणी । चतुरात्मा चतुर्व्यूहा चन्द्रबिम्बोपमानना ॥
घनश्यामात्मनिलया गोप्त्री गुप्ता गुहेशया । गेयोदारयशः पङ्क्तिर्गतैश्वर्यकृतस्मया ॥

(४०) नमस्या ❀ समस्त प्राणियों के लिये एकमात्र नमस्कार भाजन । (४१) प्रियदृष्टिः ❀ प्रिय दर्शन वाली । (४२) धरारत्नम् ❀ पृथ्वी की सर्वोत्कृष्ट रत्न स्वरूपा । (४३) धरासुता ❀ पृथिवी के सुख समूह का विस्तार करने वाली । (४४) दिव्यात्मा ❀ अलौकि बुद्धि वाली (४५) दीप्तमहिमा ❀ विख्यात प्रभाव वाली । (४६) तत्वात्मा ❀ तत्व (ब्रह्म) स्वरूप वाली । (४७) जनकात्मजा ❀ श्रीजनक वंश में सर्वोत्तम महिमा वाली, श्री सीरध्वज राजकुमारी जी ॥ ९ ॥ (४८) जगदीश परप्रेष्ठा ❀ सचराचर प्राणियों पर शासन करने वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, यम आदि से उत्कृष्ट दिव्यधामाधिप भगवान् श्रीरामजी की परम प्यारी । (४९) ज्ञानिनां परमायनम् ❀ ज्ञानियों के चित्तवृत्ति के लिए सर्वोत्तम स्थान स्वरूपा । (५०) जगन्मङ्गलमाङ्गल्या ❀ चर अचर प्राणियों के मङ्गल का भी मङ्गल स्वरूपा । (५१) जरामृत्युभयातिगा ❀ बुढ़ापा और मृत्यु के भय से अछूती ॥ १० ॥ (५२) चन्द्रकला सुखासाध्या ❀ यूथेश्वरी श्री चन्द्रकला जी के द्वारा सुख पूर्वक प्राप्त होने के योग्य । (५३) चिदानन्द स्वरूपिणी ❀ जिसका सबकुछ चेतन एवम् आनन्दमय है, उस ब्रह्म को साकार स्वरूप वाली । (५४) चतुरात्मा ❀ मन, बुद्धि, चित और अहङ्कार इन चार स्वरूपों वाली । (५५) चतुर्व्यूहा ❀ श्रीभरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न इन तीनों भाइयों के समेत चार शरीर वाले श्रीराघवेन्द्र सरकार की पटरानी जी । (५६) चन्द्रबिम्बोपमानना ❀ शरद ऋतु के पूर्ण चन्द्र के बिम्ब के समान उज्वल प्रकाशमय, परम आह्लादकारी श्रीमुख-छटावाली ॥ ५७ ॥ घनश्यामात्मजा ❀ सजल मेघों के सदृश श्यामवर्ण श्रीराघवेन्द्र सरकार के हृदय में निवास करने वाली । (५८) गोप्त्री ❀ समस्त चर-अचर प्राणियों की रक्षा करने वाली (५९) गुप्ता ❀ भक्तों के हृदय रूपी वृक्ष में छिपी हुई । (६०) गुहेशया ❀ प्राणियों के हृदय रूपी गुफा में परमात्मा स्वरूप से शयन करने वाली । (६१) गेयोदारयशःपङ्क्तिः ❀ गान करने योग्य यश-समूह वाली । (६२) गतैश्वर्यकृतस्मया ❀ अपने अनुपम ऐश्वर्य के अभिमान से अछूती ॥ १२ ॥

गमनीयपदासक्तिः खलमात्रनिवारिणी । कृपापीयूषजलधिः कृतज्ञा कृतिसाधनम् ॥
कल्याणप्रकृतिः काम्या कल्याणी कामवर्षिणी । कारुण्यार्द्रविशालाक्षी कम्बुकण्ठी कलानिधिः ॥

केलिप्रिया कलाधारा कल्मषौघनिवारिणी । ॐ शब्दवाच्या ह्योजोऽब्धिरुदितश्रीरुदारधीः ॥
उदारकीर्त्तिरुदिता ह्युदारातुल्यदर्शना । इष्टप्रदेभगमना आदिजाऽऽह्लादिनी परा ॥
आश्रितवत्सलाऽऽराध्या ह्यनिर्देश्यस्वरूपिणी । अद्वितीयसुखाम्भोधिरव्याजकरुणापरा ॥
अनवद्याऽप्रमत्तात्मा अनन्तैश्वर्यमण्डिता । अमानाऽयोनिजाऽकोपा अविचिन्त्याऽनघस्मृतिः ॥

(६३) गमनीयपदासक्तिः ❀ आसक्ति प्राप्त करने योग्य श्रीचरण कमल वाली । (६४) खलभावनिवारिणी ❀ अहित कर भावना को भगा देने वाली । (६५) कृपापीयूषजलधिः ❀ समुद्र के समान अथाह कृपा रूपी अमृत वाली । (६६) कृतज्ञा ❀ जीवों के कभी के किये हुए किञ्चित् भी पूजन, वन्दन, स्मरण तथा अर्पण आदि कर्म को, कभी भी न भूलने वाली । (६७) कृतिसाधनम् ❀ भगवत् प्राप्ति के पुरुषार्थ की साधन स्वरूपा ॥ १३ ॥ (६८) कल्याण प्रकृतिः ❀ मङ्गलकारी स्वभाव वाली । (६९) काम्या ❀ पूर्ण कामों के लिये भी, प्राप्ति की इच्छा करने योग्य । (७०) कल्याणी ❀ कल्याण स्वरूपा । (७१) कामवर्षिणी ❀ भक्तों की हितकर इच्छाओं की वर्षा करने वाली । (७२) कारुण्यार्द्र विशालाक्षी ❀ दयाभाव से द्रवित कमल के समान विशाल नेत्रों वाली । (७३) कम्बुकण्ठी ❀ शङ्ख के समान रेखाओं से युक्त मनोहर कण्ठ वाली । (७४) कलानिधिः ❀ समस्त विद्याओं की भण्डार स्वरूपा ॥ १४ ॥ (७५) केलिप्रिया ❀ भक्त सुखद लीलाओं में प्रेम रखने वाली । (७६) कलाधारा ❀ समस्त विद्याओं के आधार स्वरूपा । (७७) कल्मषौघनिवारिणी ❀ स्मरण करने वालों के पाप समूहों को भगा देने वाली । (७८) ॐ शब्दवाच्या ❀ ॐ शब्द से वर्णन करने योग्य । (७९) ओजोऽब्धिः ❀ समुद्र के समान अथाह बल पराक्रम वाली । (८०) उदितश्रीः ❀ जो वेदशास्त्रों के द्वारा गाई हुई हैं एवं कण-कण, पत्ती-पत्ती से जिनकी स्वयं शोभा कान्ति तथा ऐश्वर्य प्रकट है । (८१) उदारधीः ❀ जिनकी बुद्धि, किसी भी असंभव कार्य को करने में कभी सङ्कोच को प्राप्त नहीं होती ॥१५॥ (८२) उदारकीर्ति ❀ सर्वाभीष्टदायक यश वाली । (८३) उदिता ❀ सभी वेद शास्त्र, पुराण संहिताओं के द्वारा जिनका वर्णन किया गया है । (८४) उदारातुल्यदर्शना ❀ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष दायक अनुपम मनोहर दर्शन वाली (८५) इष्टप्रदा ❀ भक्तों को मनोवांछित सिद्धि प्रदान करने वाली । (८६) इभगमना ❀ गजराज के समान मनोहर चाल से चलने वाली । (८७) आदिजा सबसे पहिले प्रकट होने वाली । (८८) आह्लादिनीपरा ❀ आह्लाद प्रदायिका सभी शक्तियों में सर्वोत्तम ॥ १६ ॥ (८९) आश्रितवत्सला ❀ अपने आश्रितों के अपराधों पर ध्यान न देकर उनके हित में सर्दव तत्पर रहने वाली । (९०) आराध्या ❀ सब प्रकार से, सभी के उपासना करने योग्य । (९१) अनिर्देश्य स्वरूपिणी ❀ इदमित्थं (ऐसा ही है यह) निश्चय न कर सकने योग्य स्वरूप वाली । (९२) अद्वितीयसुखाम्भोधिः ❀ समुद्र के समान अनुपम, असीम अथाह सुख वाली । (९३) अव्याजकरुणापरा ❀ प्रत्येक प्राणी के प्रति बिना किसी स्वार्थ भावना के ही कृपा करने में तत्पर रहने वाली ॥ १७ ॥ (९४) अनवद्या ❀ सब प्रकार प्रशंसा योग्य । (९५) अप्रमत्ता ❀ भक्तों की सुरक्षा में सदा पूर्ण सावधान रहने वाली । (९६) अनन्तैश्वर्यमण्डिता ❀ असीम (ब्रह्म के) ऐश्वर्य से

विभूषित । (९७) अमाना आदि, अन्त मध्य आदि नाप तोल से रहित । (९८) अयोनिजा बिना किसी कारण अपनी भक्ति-भाव पूरिणी इच्छा से प्रकट होने वाली । (९९) अकोपा वध योग्य अपराधी जीवों पर भी क्रोध न करने वाली । (१००) अविचिन्त्या भगवान् श्री रामजी के स्वयं चिन्तन करने योग्य । (१०१) अनघस्मृतिः पुण्यमय सुमिरण वाली ॥ १८ ॥

अनीहाऽनियमाऽनादिमध्यान्ताऽद्भूतदर्शना । अजेयाऽकल्मषाऽकारवाच्येत्यवनिपोत्तम ॥
अष्टोत्तरशतं नाम प्रोच्यतेऽस्या महर्षिभिः । पठतां प्रत्यहं भक्त्या काऽपि सिद्धिर्न दुर्लभा ॥

(१०२) अनीहा पूर्ण काम होने के कारण सभी प्रकार की चेष्टाओं से रहित । (१०३) अनियमा भाव गम्य होने के कारण किसी जप, तप, आदि साधन से प्राप्त होने वाली तथा भगवत् प्राप्तिकारक साधन स्वरूपा । (१०४) अनादिमध्यान्ता आदि, मध्य अन्त से रहित पूर्ण ब्रह्म स्वरूपा । (१०५) अद्भुत दर्शना परम आश्चर्यमय दर्शन वाली । (१०६) अजेया कभी भी किसी के द्वारा न जीती जा सकने वाली । (१०७) अकल्मषा समस्त पाप दोषों से रहित । (१०८) अकारवाच्या भगवान् श्री राघवेन्द्र सरकार के ही वर्णन करने योग्य ॥

हे राजाओं में श्रेष्ठ श्री मिथिलेश जी महाराज ! इस प्रकार महर्षियों ने इन श्रीलली जी के १०८ नामों का वर्णन किया है, जिनका नित्य प्रति श्रद्धा पूर्वक पाठ करने वालों के लिए इस त्रिलोकी में कोई भी सिद्धि दुर्लभ नहीं है ॥ १९-२० ॥

श्रीजनक उवाचः—

श्रुतं नाम सहस्रं मे ह्यष्टोत्तरशतं तथा । इदानीं श्रोतुमिच्छामि द्वादशं लोकविश्रुतम् ॥
यदि श्रोतुं तदर्होऽस्मि भवद्भिः कृपयोच्यताम् । अक्लेशं परमोदाराः सिद्धा ! कृपणवत्सलाः ॥

श्रीजनकजी महाराज बोले हे महर्षियों ! आप लोगों की कृपा से मैंने श्रीललींजी के हजार तथा १०८ नामों का श्रवण कर लिया, अब लोक प्रसिद्ध १२ नामों का भी श्रवण करना चाहता हूं ॥ २१ ॥ हे परम उदार, दीन वत्सल, सिद्धि महात्माओं ! यदि मैं उन्हें सुख पूर्वक सुनने का अधिकारी होऊं, तो आप लोग उन्हें भी सुनाने की कृपा करें ॥ २२ ॥

श्रीजानकी द्वादश नाम

श्रीअन्तरिक्ष उवाच—

मैथिली जानकी सीता वैदेही जनकात्मजा । कृपापीयूषजलधिः प्रियार्हा रामवल्लभा ॥
सुनयनासुता वीर्यशुल्काऽयोनी रसोद्भवा । द्वादशैतानि नामानि वाञ्छितार्थप्रदानि हि ॥

श्रीअन्तरिक्ष-योगेश्वरजी महाराज बोले:—

(१) मैथिली ❀ श्रीमिथिवंश में सर्वोत्कृष्ट रूप से विराजने वाली श्री सीरध्वज राज-दुलारी जी। (२) जानकी ❀ श्रीजनकजी महाराज के भाव की पूर्ति के लिये उनकी यज्ञवेदी से प्रकट होने वाली। (३) सीता ❀ आश्रितों के हृदय से सम्पूर्ण दुःखों की मूल दुर्भावना को नष्ट करके सद्भावना का विस्तार करने वाली! (४) वैदेही ❀ भगवान् श्रीरामजी के चिन्तन की तल्लीनता से देह की सुधि भूल जाने वाली शक्तियों में सर्वोत्तम। (५) जनकात्मजा ❀ श्रीसीर-ध्वज महाराज नाम के श्रीजनकजी महाराज के पुत्री भाव को स्वीकार करने वाली। (६) कृपा पीयूषजलधिः ❀ समुद्र के समान अथाह एवम् अमृत के सदृश असम्भव कर देने वाली कृपा से युक्त। (७) प्रियार्हा ❀जो प्यारे के योग्य है और प्यारे श्री रामभद्र जू जिनके योग्य हैं। (८) रामवल्लभा ❀जो श्रीराघवेन्द्र सरकार की परम प्यारी है॥ २३ ॥ (९) सुनयनासुता ❀ श्रीसुनैना महारानी के वात्सल्यभाव-जनित सुख का भलीभांति विस्तार करने वाली। (१०) वीर्यशुल्का ❀ शिवधनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर ही बधू रूप में जिनकी प्राप्ति का साधन है अर्थात् जो भगवान् शिवजी के धनुष तोड़ने की शक्ति रूपी न्यौछावर अर्पण कर सकेगा उसी के साथ जिनका विवाह होगा। (११) अयोनिः ❀किसी कारण विशेष से प्रकट न होकर केवल भक्तों का भाव पूर्ण करने के लिये अपनी इच्छानुसार प्रकट होने वाली। (१२) रसोद्भवा ❀ जन्म से ही अपनी अलौकिकता व्यक्त करने के लिये किसी प्राकृत शरीर से प्रकट न होकर पृथ्वी से प्रकट होने वाली। हे राजन्! श्रीललीजी के ये बारह नाम मनोवाँछित (मनचाही) सिद्धि को प्रदान करने वाले हैं।

"इति श्रीजानकी चरितामृत श्रीजानकी अष्टोत्तर शतनाम तथा श्रीजानकी द्वादश नाम सम्पूर्ण हुआ।

॥ श्रीसीताभक्तिः श्रीरामकृपाप्रदायिनी ॥

विभाति सीता सखि सुन्दराङ्गी विशालनेत्रा रसरूपराशिः।
श्रीरामनेत्रोत्सव जीवना च, मनोहरा रामरति प्रदायिनी॥

सीतां विना ये सखि कोटिकल्प समास्तु रामं जनकात्मजासुम्।
ध्यायन्ति निन्याः श्रमभागिनस्ते रामप्रसादाद्विमुखाः भवन्ति॥

—श्रीमाधुर्य केलिकादम्बिनी ॥ २८४-२८५ ॥

॥ श्रीसदाशिव संहितायां सौमित्रावाक्यं ॥

वेदान् प्रति

तत्र वागेश्वरी देवी माधवी प्रिय वल्लभा ।
असिता च सिता चैव प्रकृतिर्गण सम्भवा ॥१॥
उमा देवी महामाया श्रुतिजात विशारदा ।
पद्महस्ता बिशालाची कमला हरिवल्लभा ॥२॥
सुरभी प्रेमदा नित्या वृन्दा देवी मनोरमा ।
चिदात्मकं सदाभासं नयनानन्द दायकम् ॥३॥
स्वकान्तं हृदयारामं रामं राजीवलोचनम् ।
निर्विकारं पृथुश्रोण्यो राघवं पर्युपासते ॥४॥
उर्वशी मेनका रम्भा राधा चन्द्रावली तथा ।
हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगंधा सुलोचना ॥५॥
हंसिनी मालिनी पद्मा हरिणी मृगलोचनी ।
कर्पूराङ्गी विशालाक्षी शक्तिप्रिया रसोत्सवा ॥
चारुनेत्रा-चारुगात्रा चार्वङ्गी चारु लोचना ।
रामस्य परिनृत्यन्ति गीतवादित्र मोहिताः ॥६॥

इति सदाशिव संहितोक्ता श्रीजानकीसखी नामावली ॥

श्रीवागीश्वरी देवी, मावदी, प्रियवल्लभा, असिता, सिता तथा प्रकृतिगणसंभवा, उमादेवी महामाया, श्रुतिजातविशारदा, पद्महस्ता, विशालाक्षी, कमला, हरिवल्लभा, सुरभी, प्रेमदा, नित्या वृन्दा देवी मनोरमा ये सब सच्चिदानन्द रूप नित्यप्रकाशित नयनों को परमानन्द देनेवाले हृदय के आराम राजीवलोचन राम अपने प्राणनाथ को निर्विकार भाव से ये पृथुश्रोणी श्रीराघव की सदा उपासना करती हैं। उर्वशी मेनका राधा रम्भा चन्द्रावली हेमा क्षेमा वरारोहा पद्मगन्धा सुलोचना हंसिनी मालिनी पद्मा हरिणी मृगलोचना कर्पूराङ्गी विशालाक्षी शक्तिप्रिया रसोत्सवा चारुनेत्रा चारुगात्रा चार्वङ्गी चारुलोचना ये सब गीत वादित्र से मोहित होकर श्रीरामजी के साथ नृत्य करती हैं। ऐसा सदाशिवसंहिता में वेदों के प्रति सौमित्री (श्रीलक्ष्मणजी) ने कहा है।

निखिलशास्त्रनिष्णात विद्वद्वर अनन्त श्रीस्वामी पं० श्रीरामवल्लभाशरणजी महाराज कृत श्रीकरुणासिंधुजी के श्रीरामनवरत्न ग्रंथ की रत्नप्रभा टीका से उद्धृत ॥

श्रीसीताऽष्टाक्षरस्तोत्रम्

श्रीअङ्गद उवाच—

लंकाया हि प्रचण्डाग्नेर्यत्पाठाद् रक्षितोऽसि तत् ।
श्रीसीताष्टाक्षरस्तोत्रं वक्तुमर्हसि मारुते ॥१॥

श्रीहनुमानुवाच—

रामभक्त महाभाग सन्मते बालिनन्दन । श्रीसीताष्टाक्षर स्तोत्रं सर्वभीतिहरं शृणु ॥
श्रीमद् रामप्रिया पुण्या श्रीमद्राम परायणा । श्रीमद् रामादभिन्ना च श्रीसीताशरणं मम ॥
शरणाश्रितरक्षित्री भास्करादेर्विभासिका । आकारत्रयशिक्षित्री श्रीसीताशरणं मम ॥
शक्तिदा शक्तिहीनानां भक्तिदा भक्तिकामिनाम् । मुक्तिदा मुक्तिकामानां श्रीसीताशरणं मम॥
ब्रह्माण्युमारमाराध्या ब्रह्मेशादि सुरस्तुता । वेदवेद्या गुणाम्भोधिः श्रीसीतशरणं मम ॥
शून्या हि निग्रहेणाथानुग्रहाब्धिः सुवत्सला । जननीसर्वलोकानां श्रीसीताशरणं मम ॥
चिदचिद्भ्यां विशिष्टा च सच्चिदानन्दरूपिणी । कार्यकारणरूपा च श्रीसीताशरणं मम ॥
विशोकादिव्यलोका च विम्बोदिव्यभूषणा । दिव्याम्बरा च दिव्याङ्गीश्रीसीताशरणं मम ॥
भर्त्री च जगतः कर्त्री हर्त्री जनकनन्दिनी । जगद्धर्त्री जगद्योनिः श्रीसीताशरणं मम ॥
सर्वकर्म समाराध्या सर्वकर्म फलप्रदा । सर्वेश्वरी च सर्वज्ञा श्रीसीताशरणं मम ॥
नित्यमुक्तस्तुता स्तुत्या सेविता विमलादिभिः । अमोघपूजनस्तोत्रा श्रीसीताशरणं मम ॥
कल्पवल्ली हि दीनानां सर्वदारिद्र्यनाशिनी । भूमिजा शान्तिदाशान्ता श्रीसीताशरणं मम॥
आपदांहारिणी चाथकारिणी सर्वसम्पदाम् । भवाब्धितारिणी सेव्या श्रीसीताशरणं मम ॥

श्रीवशिष्ठ उवाच—

पाठाद्धनुमता प्रोक्तं नित्यमुक्तेन श्रद्धया ॥
श्रीसीताष्टाक्षरस्तोत्रं भुक्ति मुक्तिप्रदं नृणाम् ॥१५॥

॥ इति श्रीवशिष्ठ संहितायां श्रीसीताऽष्टाक्षर स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

—: श्रीसीता--अष्टाक्षर--स्तोत्रम् :—

श्रीअङ्गद-उवाचः—

हे मारुत नन्दन ! लङ्का में प्रचण्ड अग्निदाह से आप जिस स्तोत्र के पाठ करने से बच गये उस श्रीसीताष्टाक्षर मन्त्र स्तोत्र आप कृपाकर हमको सुनाइये ॥ १ ॥

श्रीहनुमान उवाचः—

हे बालिनन्दन ! हे महाभागा ! आप श्रीराम के भक्त हैं। मैं आपको सर्व भय भञ्जन श्री सीताष्टाक्षर स्तोत्र सुनाता हूं आप प्रेम से श्रवण करिये। परम श्रीरामपरोयण पुण्य स्वरूपा श्री मतीरामाप्रिया जी सदैव श्री राम से अभिन्न हैं, वे श्री सीता जी ही मेरा शरण है ॥ ३ ॥ जो आश्रित शरणागत की रक्षा करने वाली है। जो सुर्यादिक के भी प्रकाशक है तथा जो आकार त्रय रहस्य की शिक्षा प्रदान करने वाली है, वे श्रीसीता मेरा शरण (रक्षक) हैं ॥ ४ ॥ जो शक्ति हीनों को शक्ति प्रदान करती हैं, जो भक्ति चाहने वालों को भक्ति देती हैं तथा जो मोक्षाभिलाषियों को मुक्ति प्रदान करती है वही सीताजी मेरा शरण (रक्षक) है ॥ ५ ॥ जो उमा-रमा-ब्रह्माणी द्वारा आराधनीया हैं, जिनकी ब्रह्मादि देवतागण भी प्रार्थना करते हैं, वेदों द्वारा जो जानी जाती हैं ऐसी सद्गुणों के महासागर श्रीसीताजी ही मेरा शरण (रक्षक) है ॥६॥ जो किसी को कभी दण्ड तो देती ही नहीं है सदैव वात्सल्य भावसे अपराधों को भुलाकर सबपर निरन्तर कृपा अनुग्रह ही करती रहतीं हैं, सभी लोकों की जो जगन्माता है वही श्रीसीताजी मेरा शरण अश्रय (रक्षक) हैं ॥ ७ ॥ जो जड़ चेतन से विशिष्ट हैं तथा स्वयं सच्चिदानन्द स्वरूपा है, तथा सबकी कार्य तथा कारण रूपा है वही श्रीसीताजी मेरा शरण (आधार) है ॥ ८ ॥ जो शोकातीत हैं, दिव्य-लोक वासिनी हैं। विभ्वी (व्यापक) हैं दिव्य वस्त्रालङ्कारों से अलंकृत हैं तथा दिव्य देहधारी हैं वही सीताजी मेरा आश्रय (शरण) है ॥ ९ ॥ जो जगत् का भरण पोषण तथा संहार करने वाली हैं, जो जगत् को धारण करने वाली हैं। तथा जगत् को उत्पन्न करने वाली है वही श्रीसीताजी मेरा शरण है ॥ १० ॥ सभी सत्कर्मों को करते समय जिनकी सुन्दर आराधना की जाती है, जो सभी कर्मों के फल को प्रदान करने वाली है। जो सर्वेश्वरी तथा सर्वज्ञा हैं वे श्रीसीताजी मेरा शरण आधार हैं। जिनकी नित्य मुक्तजन सदा स्तुति करते हैं, जो स्तुति करने योग्य हैं, जो विमला-उत्कर्षिणी आदि अष्ट महा शक्तियों के द्वारा सेवित हैं। जिनकी पूजा-प्रार्थना-स्तुति अमोघ फल दाता है। वे श्रीसीताजी मेरा शरण हैं ॥ १२ ॥ जो दीन हीनों के सर्व दारिद्रय को हरण करने वाली दिव्य कल्पलता है ऐसी भूमि पुत्री शान्त स्वरूपा परम शान्ति प्रदायिनी श्रीसीताजी मेरा शरण है ॥ १३ ॥ जो आपत्ति विपत्ति को हरण करने वाली हैं, सर्व सुखद सम्पत्ति प्रदान करने वाली हैं। भवसागर से तारने वाली है। भवसागर से तारने वाली सर्वलोक सेवनीय श्रीसीताजी मेरा शरण (आधार) है ॥ १४ ॥

श्रीवशिष्ट उवाचः—

श्री हनुमान जी का कहा हुआ, यह श्रीसीताष्टाक्षर स्तोत्र मनुष्यों को भुक्ति तथा मुक्ति प्रदान करने वाला है ॥

॥ यह श्री वशिष्ठ संहितान्तर्गत श्री सीताष्टाक्षर स्तोत्र सम्पूर्ण हुआ ॥

॥ जय जनक लली जय जनक लली ॥

रसना रट ले रस प्रेमभरी, जय जनकलली जय जनकलली ।
सुमिरन करले आनन्द भरी, जय जनकलली जय जनकलली ॥
क्या करती मुखमें परी-परीं, भज जनकलली रट जनकलली ।
मन जनकलली का ध्यान धरे; मुख जनकलली का गान करे ॥
नयना बरसावें प्रेम भरी, जय जनकलली जय जनकलली ।
बन भक्ति भाव में मतवाली, पीले तूं स्नेहसुधा प्याली ॥
खिल उठे हृदय की कली-कली, जय जनकलली जय जनकलली ।
सोवत जागत जय जनकलली, खावत पीवत जय जनकलली ॥
पल पल निशिवासर घड़ी-घड़ी, भज जनकलली रट जनकलली ।
सीते ! सीते ! कीर्तन करले, रस दिव्य महा उरमें भरले ॥
गूंजे स्वर घर-घर गली-गली, जय जनकलली जय जनकलली ।
करुणा रघुनन्दन की होगी, प्यारी जगवन्दन की होगी ॥
तूं कहलवेगी भली-भली, भज जनकलली रट जनकलली ।
मङ्गलमय नाम मधुर प्यारा, हिय हर्षित होकर गुञ्जारा ॥
जय वैदेही मिथिलेशलली, जय जनकलली जय जनकलली ।
तूं डूबेगी ज्यों ज्यों गहरे, लहरेगी "प्रेमनिधी" लहरें ॥
यह बात समझले खरी-खरी, भज जनकलली रट जनकलली ॥

—"प्रेमनिधि,"

श्रीवशिष्ठसंहितान्तर्गतं श्रीमैथिलीप्रोक्तम् श्रीयुगलतत्त्ववैभवम्

श्रीसीतारामाभेदः

श्रीवशिष्ठ उवाच—

श्रृणु वदामि ते वत्स मन्त्रराजपरम्पराम् । यस्याश्च वन्दनाद् रामश्चात्यन्तं हि प्रसीदति ॥

सृष्ट्यादौ च सिसृक्षुः श्रीरामोविधिविधाय हि । सृष्टये प्रेषयामास वेदं ज्ञानमहानिधिम् ॥

तथाऽप्यर्थाव बोधस्याभावाद् विधिससर्ज न । जातायामशी भक्तौ च गुरुभक्तियंतो न हि ॥

भक्तिद्वये यतश्चास्ति तत्त्वप्रकाश हेतुता । ततो वेदार्थबोधो न गुरोर्भक्तेरभावतः ॥

ततो रामस्य खेदं हि समुद्वीक्ष्य च मैथिली । गृहीत्वा विधिवत् रामान्मन्त्रराजं षडक्षरम् ॥

हनुमते च दत्त्वा तं राममन्त्रं षडक्षरम् । विधये मन्त्रदानाय प्रेरयामन्स मारुतिम् ॥

श्रीहनुमानुवाच—

न दत्त्वा स्वीयमन्त्रं त्वमन्यमन्त्रमदाः कथम् ?

श्री वशिष्ट जी ने कहाः—हे वत्स ! जिसकी वन्दना करने से श्रीरामजी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं उस मन्त्रराज परम्परा का अब मैं वर्णन करता हूं उसको श्रवण करो ॥ १ ॥ सृष्टि के आदिकाल में श्रीराम ने ब्रह्माजी को उत्पन्न करके संसार बनाने की प्रेरणा की वेद ज्ञान के महा समुद्र समान विधाता फिर भी संसार न बना सके, क्योंकि वे वेदार्थ न समझ सके थे, प्रभु के प्यारे भक्तों में तथा प्रभु में गुरु भक्ति उनकी नहीं हुई थी, विना गुरु भक्ति के तत्व का प्रकाश नहीं होता है तथा वेदार्थ बोध नहीं होता है। अतः श्रीराम के मन का क्षोभ देखकर श्रीजानकीजी ने श्रीरामजी से विधि पूर्वक षडक्षर मन्त्रराज ग्रहण कर श्रीहनुमानजी को श्रीराम मन्त्र प्रदान किया तथा ब्रह्माजी को मन्त्रोपदेश देने के लिये श्रीमारुतिजी को प्रेरित किया। तब श्री हनुमान जी ने श्रीसीताजी से पूछा—आपने स्वयं अपना मन्त्र प्रदान न कर अन्य मन्त्र का उपदेश हमको क्यों दिया ? (श्लोक १ से ७ तक)

श्रीमैथिल्युवाच—

एवं पृष्टाऽऽञ्जनेयेनावदत् सा श्रृणु मारुते ॥७॥

प्राणावप्यधिको मह्यं प्रधान् रामो वराननः । यथा रामस्तथाऽहं च भेदः कश्चिन्नचावयोः॥

शीतता हि यथानीरे तथाऽहं राघवे स्थिता । गन्धवत्त्वं यथाभूम्यांस्थितो रामस्तथामयि ॥

इच्छाम्यहं न किञ्चिद्धि कर्त्तुं रामेच्छयाविना । मां विना न च रामोऽपिकिञ्चित्कर्त्तुं समीहते॥

सर्वेश्वरी यथा चाहं रामः सर्वेश्वरस्तथा । षड्गुणाभगवान् रामः षड्गुणाऽहं स्वभावतः ॥
सर्वस्याधारभूतौ च त्वावामेव हि मारुते । स्वे महिम्निस्थितावावामन्यामारो न चावयोः ॥
सच्चिदानन्दरूपश्च मादृशो राघवोऽपि हि । मादृशो राघवश्चापि सर्वस्याराध्यतां गतः ॥
सर्वफलप्रदौ चावांनित्यौ च सर्वशेषिणौ । नित्यलीला विभूत्योस्त चचावांनाथौ श्रुतौ श्रुतौ॥
दिव्यदेहगुणो रामो दिव्यदेहगुणा ह्यहम् । भक्त्या मुक्तिप्रदो रामो तथा चाहंमता वुधैः ॥

श्री मैथिली जू ने कहाः— हे पवन कुमार ! मुझे प्राण से भी अधिक प्रिय श्रीराम हैं, परम सुन्दर श्रीराम तथा हममें कुछ भी भेद नहीं है । जैसे पृथिवी में गन्ध तथा जल में शीतलता है वैसे ही मैं श्रीराम में विराजमान हूं । मैं श्रीराम की इच्छा विना कुछ भी नहीं चाहती तथा राम भी मेरे बिना कुछ भी नहीं चाहते हैं । मैं सर्वेश्वरी हूं तो वे सर्वेश्वर हैं, षड्गुण पूर्ण श्रीराम भगवान हैं तो मैं भी षड्गुण पूर्ण भगवती हूं । सबके आधार भूत हम दोनों ही हैं । हम दोनों अपनी ही महिमा में प्रतिष्ठित हैं, हमारा अन्य कोई आधार नहीं है । दोनों ही सच्चिदानन्द स्वरूप है । मेरी ही भांति श्रीराम भी सबके आधार भूत है । हम दोनों ही नित्य हैं, सभी प्रकार के फल प्रदान करने वाले हैं तथा सबके शेषी हैं । नित्य तथा लीला दोनो विभूति के नायक हैं, श्रुति प्रसिद्ध हैं, श्रीराम दिव्य विग्रह तथा दिव्य गुणगणागार हैं उसी प्रकार मैं भी हूं । भक्ति वालों को मुक्ति प्रदान करने वाले भी हम दोनों ही हैं ऐसा विद्वान् महापुरुषों का अभिमत है । (श्लोक ८ से १५ तक)

पूज्यौस्तुत्यौ तथाऽमोघौ कीर्त्तनीयौ समावथ । चिन्तनीयौ प्रणामार्हावावां दृश्यावभीष्टदौ ॥
प्रावां तौ हि यतेःकश्चिन्नाधिको न च यत्समः । सर्वात्मानौ मतौचावां सर्वेषांप्रेरकौतथा ॥
सूक्ष्माचिच्चिद्द्वयेनावां विशिष्टौप्रलये किल । सृष्टावावांविशिष्टौ तु स्थूलाचिच्चिद्द्वयेन हि ॥
सत्यकामौ तथा चावां सत्यसंकल्पतां गतौ । शरण्यौ वेदनीयौ च भजनीयौ हि मुक्तये ॥
वेदवेद्यो जगद्योनिर्मन्निभो राघवो मतः । जगत्सृष्ट्यादयो लीला ममेव राघवस्य च ॥
ममलीलां बिना रामलीलां पूर्णाकदापि न । पूर्णा ममापिनो लीला श्रीरामलीलया विना ॥
सर्वेषामवताराणामावा मेवावतारिणौ । भासकः भास्करादीनामावामेव विभासकौ ॥
त्रातुं धर्मं च भक्तांश्चावतरावो युगे युगे । आवयोर्नित्यसम्बन्धः शक्ति शक्ति मतोरिव ॥
मया विना वदन् रामं रामं विना वदंश्च माम् । वदत्यावां यतश्चावामभिन्नावेव सम्मतौ ॥
कुरुते नावतिप्रीतो तथाप्युभौ ववन्नरः । द्विगुणं कीर्त्तनं यस्माज्जायते च तथाऽऽवयोः ॥
सर्वशक्तिस्वरूपाऽहं सर्वशक्तिर्हि राघवः । वर्णिता शास्त्रतत्त्वज्ञैरावयोः सर्वरूपता ॥
जगद्देहश्च सर्वज्ञो विभू रामः सर्वव हि । जगद्देहा तथैवाहं सर्वज्ञा विभुतां गता ॥

ऐश्वर्येण सदा रामो मादृशश्चास्ति मारुते । माधुर्येऽपि सदारामो मत्साद्दश्यं जहाति न ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं ध्रुवं नश्यति तस्य हि । अज्ञत्वेनावयोर्निन्दां यः करोति नराधमः ॥
कुरुतेत्वधमो मूढो भेदबुद्धिं च आवयोः । यावच्चन्द्ररवी तस्य तावद्धि निरये स्थितिः ॥
ततोऽदां मम नाथस्य मन्त्रराजं षडक्षरम् । शिष्यस्य ते प्रियं कर्त्तुं गच्छवत्स प्रदेहितम् ॥

॥ इति श्रीपञ्चरात्रागमान्तर्गत श्री वशिष्ठ संहितायां जगज्जननी श्रीसीताऽभिहिता
श्रीसीतारामा भेदः ॥

हे हनुमान ! हम दोनों ही पूजा करने योग्य चिन्तनीय-नमन करने योग्य तथा प्रणाम करने मात्र से ही अमोघ फल देने वाले हैं । हम दोनों के समान ही कोई नहीं है तब अधिक तो कौन हो सकता है । सभी आत्मा, सभी के प्राण सभी के प्रेरक तथा अन्तर्यामी हैं । प्रलय काल सूक्ष्म तथा सृष्टि काल में स्थूल चित् अचित् (जड़-चेतन, माया-जीव) विशिष्ट हम दोनों ही रहते हैं । हमारी कामना सत्य है, सङ्कल्प सत्य है, मुक्ति के लिये हम दोनों ही भज-नीय हैं, जानने योग्य हैं तथा शरणागति प्रदायक हैं । हमारे समान ही वेदों के द्वारा प्रतिपाद्य जगत् का कारण-उद्भव-पालन-प्रलयादि लीला नायक श्रीराम भी है । मेरे विना राम की तथा राम के विना मेरी लीला कभी पूर्ण नहीं होती । सभी अवतारों के अवतारी तथा सूर्य्यादिक सभी प्रकाशकों के प्रकाशक हम दोनों ही हैं । धर्म की रक्षा तथा भक्तों के सुख के लिये हम दोनों ही युग-युग में प्रकट होते हैं, हमारा तथा उनका सम्बन्ध शक्ति तथा शक्तिमान् की भाँति नित्य है । मेरे विना श्रीराम तथा उनके विना मेरा भजन कीर्तन भक्तजन नहीं करते हैं, दोनों का युगल नाम सकीर्तन करने से दूना फल प्राप्त होता है । इस लिये अत्यन्त आदर पूर्वक भक्त जन बड़े प्रेम से श्रीसीताराम संयुक्त नाम संकीर्तन करते हैं । वेद शास्त्रों ने हमको तथा उनको सर्व शक्ति सम्पन्न वर्णन किया है । जगत् हमारा तथा श्रीराम का देह है, हम दोनों ही विभु हैं, ऐश्वर्य्य में तथा माधुर्य्य में मेरे समान श्रीराम ही हैं । जो नराधम विना जाने हम दोनों की निन्दा करते हैं तथा भेद बुद्धि लगाते हैं उसके करोड़ों जन्मों का पुण्य नष्ट हो जाता है। जब तक सूर्य चन्द्र रहेंगे तब तक वह नरक में निवास करता है । हे अञ्जनीनन्दन ! इसलिये हमने अपने प्राणनाथ श्रीराम का षडक्षर तारक मन्त्र आपको प्रदान किया है । हे प्रियवर ! तुम मेरे शिष्य हो तुम्हारे कल्याण के लिये मैंने यह उपदेश किया है, हे वत्स ! जाओ, अब तुम यह मन्त्र ब्रह्माजी को प्रदान करो ।

यह श्रीनारदपञ्चरात्रान्तर्गत श्री वशिष्ठ संहिता में जगज्जननी श्रीजानकी कथित श्रीसीताराम युगल तत्व की एकता का वर्णन सम्पूर्ण हुआ ।

।। श्रीमिथिला परत्वम् ।।

तस्मिन्नेवा महापुण्या मिथिलाख्या महापुरी। विश्रुता सर्ववेदेषु ब्रह्मानन्द मयी सदा ।।
यस्याः स्मरणमात्रेण नामोच्चारणतः प्रिये। अविद्या सहकामाद्यैः स्वैर्गुणैर्नश्यति ध्रुवम् ।।
अप्राकृत महाश्चर्यरूपा दिव्यगुणान्विता। रम्योद्यानोपवनिका वापीकूपह्रदा वृता ।।
योगपीठ इति ख्याता परब्रह्माभि रामदा। भूमेस्तिलक मित्येवं तत्त्वविद्भि रुदाहृता ।।
यत्र स्वर्णमयीभूमिः कमलाद्याः सरिद्वराः। नानामणिगण व्रातदीप्ति भासित दिग्तटाः ।।
पूजिता मुनिभिर्नित्यं ध्येया योगविदाम्वरैः। ध्यानमात्रेण जीवानां महानन्द प्रदायिनी ।।
यत्रनित्यं महामोद लीलाभिः पुरुषोत्तमः। रमते प्रियया सार्द्धं रम्य कैशोर रूपधृक् ।।
देवरूपाः नरा यत्र धर्मशीला जितेन्द्रियाः। ज्ञानविज्ञान सम्पन्ना महापौरुषिकाः यथा ।।
नार्यः शुद्धसदाचारा धर्मतत्त्व निदर्शिकाः। लोकोत्तरगुणैः पूज्याः श्लाध्यादेवीभिरुत्तमाः ।।
वसन्ति यत्रराजानो निमिवंशोद्भवाशुभाः। विस्तीर्ण कीर्तयः शुद्धा योगिनस्तत्व दर्शिनः ।।
यत्रसीरध्वजो राजा विदेहानां शिरोमणिः। योगिवर्यः पुण्यकीर्तिस्तत्वज्ञैः समुपासितः ।।
ब्रह्मानन्द रसास्वादपूर्णः परमतत्त्ववित्। लोकचारित्र वेदज्ञो गूढ़स्नेहः परेश्वरे ।।
यस्य भावविपाकेन प्रसन्ना जगदीश्वरो। पुत्रत्वमागता चक्रे लीलाः भुवनपाविनीः ।।

।। इति श्रीलोमशसंहिताप्रोक्तं श्रीमिथिलापरत्वम् ।।

।। श्रीमिथिला--परत्वम् ।।

श्रीलोमश संहिता-प्रोक्तम्

उस पावन प्रदेश में महापुण्य स्वरूपा श्रीमिथिला नाम से विश्रुत महापुरी विराजमान है। सभी वेद-पुराणों में यह सदैव ब्रह्मानन्दमयी दिव्य भूमि के नाम से सुविख्यात है। हे प्राणवल्लभे ! जिसके स्मरण मात्र से अथवा नामोच्चारण मात्र से ही अविद्या अपने कामादिक दुर्गुणों के सहित अवश्य ही नष्ट हो जाती है ।। १३ ।।

यह मिथिला अलौकिक महान् आश्चर्य स्वरूपा दिव्य गुणों से परिपूर्ण है। अत्यन्त रमणीय उपवन-वाटिका-वापी-कूप- सरोवरों से यह सुशोभित है ।। १४ ।।

यह 'योग पीठ' इस नाम से सुप्रसिद्ध परब्रह्म श्रीराम को भी आराम प्रदान करने वाली है। तत्ववेत्ता महापुरुषों ने इसको 'भूमि का तिलक' मानकर वर्णन किया है ।। १५ ।।

जहां स्वर्णमयी भूमि 'कञ्चनवन' विराजमान हैं। श्रीकमला विमला दुधमती लक्ष्मणादिक श्रेष्ठ नदियां बहतीं हैं। जिनके तट नाना प्रकार के मणिरत्नों से प्रकाशित होते रहते हैं ॥१६॥ मुनिजन जिसकी नित्य पूजा करते हैं! योग विद्या विशारदों में सर्वश्रेष्ठ योगीराज जिसका नित्य ध्यान धरते हैं। ध्यान (स्मरण) मात्र से ही जो पामर जीवों को भी परमानन्द प्रदान करतीं हैं॥ १७ ॥

जहां पर पुराण पुरुषोत्तम प्रभु नित्य किशोर स्वरूप धारण कर अपनी प्राण प्रिया के साथ निरन्तर महान् रसमोद भरी लीलायें करते रहते हैं॥ १८ ॥ जहां के मनुष्य देव स्वरूप धर्मशील जितेन्द्रिय ज्ञान विज्ञान सम्पन्न भगवत्पार्षदों के समान दिव्यात्मा हैं॥ १९ ॥

स्त्रियां शुद्ध सदाचारिणी-धर्म तत्त्व का रहस्य ज्ञान प्रदान करने वाले लोक विलक्षण गुण सम्पन्ना स्वर्गीय देवियों द्वारा भी सम्पूजित निवास करती हैं॥ २० ॥ जहां पर निमिवंश में उत्पन्न महर्षियों के समान परम शुभ आचार वाले, जिनके विस्तीर्ण कीर्ति है ऐसे शुद्ध तत्त्वदर्शी राजयोगी राजा महाराजा गण निवास करते हैं॥ २१ ॥ जहां विदेह वंश शिरोमणि-पुण्य श्रवण कीर्ति तत्त्वज्ञ योगिजनों में वरिष्ठ योगिराज शिरोमणियों द्वारा वन्दनीय श्रीसीरध्वज महाराज विराजते हैं॥ २२ ॥ जो ब्रह्मानन्द रसास्वादन से परिपूर्ण हृदय वाले हैं, तत्त्वेत्ताओं में परमश्रेष्ठ हैं लौकिक-अलौकिक सभी प्रकार से विशुद्ध चरित्र हैं, वेद विद्या विशारद हैं, जिनका प्रभु परात्पर परब्रह्म श्रीराम में अत्यन्त गूढ़ स्नेह है॥ २३ ॥ जिनकी भावना की परिपक्व पराकाष्ठा के परवश होकर जगदीश्वरी जगन्माता सुप्रसन्न होकर पुत्री (कन्या) बनकर जिनके घर प्रकट हुईं, और त्रिभुवन को पावन करने वाली पवित्र लीलायें जहां पर कीं, वही पावन भूमि श्रीसीता जन्म स्थली श्रीमिथिलाजी है॥ २४ ॥

XXXXXXXXX
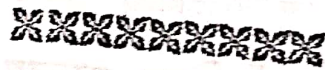
॥ श्रीसीता स्वरूप वर्णनम् ॥

शरद् राकेशास्यां विमलकल धौताङ्गरुचिरां–
स्फुरद् रत्नाकल्पां जनकतनयां विश्वजननीम्।
शुभाढ्यै यद्रामो विधिवदुपयेमे सुललितां–
महेन्द्रादि श्रेष्ठामर मुकुट निराजित पदाम्॥ १६ ॥

—श्रीविजयरामाचार्यः-श्रीराममहिम्न स्तोत्रम्।

त्रिभवी सर्वेश्वरी सीता दिव्यभूषण भूषिता।
रामाऽभिन्ना चार्चनीया रम्या श्रीरामवल्लभा॥

—श्रीपूर्णानन्दाचार्य प्रणीत्त श्रीबौधायनमतार्कः

रावणसंहिताप्रोक्तं सीतोत्पत्ति वर्णनम्

सीताजन्मकथा शर्मन् अध्यात्म खंडके मया । सम्प्राप्ता कोशलेशस्य सावतीर्णावनिस्थले ॥
तदेव संप्रवक्ष्यामि शृणुत्वं वीर पुङ्गव । विद्यावतीर्णतां प्राप्ते विधाता प्रार्थितो मया ॥
विधात्रा सा कथा प्रोक्ता मम मुक्ति प्रसाधिनी । करः ऋषिगणान्नीतः कर आयकरस्मृतः ॥
करदानं विना शर्मन् श्रौतस्मार्त क्रियाऽशुभाः । एतदर्थं मया तात नीतः ऋषिगणात्करः ॥
तेषां समीपे वीरेन्द्र आस्ते च तपसां चयः । तपोभिः ब्रह्मविधिना कृत्वासाङ्कल्पिकी क्रियाः ॥
कुम्भे तज्जलं शर्मन् एकत्री कृतवान् मया । योगिराजस्य राज्ये तु ब्रह्मवाक्येन भूतले ॥
मया संस्थापितः पूर्वं मघवद्योगि राजयोः । कलहो तपमूलेन कुपितेन्द्रेण भूतले ॥
निवृष्टिः कृतवान् राज्ये योगिराजस्य पुङ्गवः । पूर्वपुण्योदये पापे दैवज्ञवाक्य तत्परः ॥
योगिराज हलीभूतः सफालस्याग्र स्पर्शतः । प्रादुर्भूता सती शर्मन् तत्प्रभावेण भूतले ॥
तज्जलं त्रिविधं प्राप्य बहुवृष्टि वभूव ह । प्रजाः सन्तुष्ट मनसा धन्यधन्येति वादिरव ॥
केवलोपासनं श्रेष्ठं महीजायाः शुभंकरम् ॥

॥ इति श्रीरावण संहिताप्रोक्तं श्रीसीतोत्पत्ति वर्णनम् ॥

—❀—

हे शर्मन् ! श्रीसीताजी की तथा कौशलेन्द्रजू की जन्म कथा मुझे अध्यात्मखण्ड में प्राप्त हुई थी, वह भूतल से कैसे प्रकट हुई उसी बात को मैं अब भली-भाँति वर्णन करता हूं, हे वीर पुङ्गव ! तुम प्रेम से श्रवण करो । जब मैं विद्याध्ययन में उत्तीर्ण हो गया, तब मैंने ब्रह्मा जी से प्रश्न किया, उसके उतर में मेरी मुक्तिप्रदायी कथा इस प्रकार सुनाई । उन्होंने कहा कि-तुम ऋषिगणों से कर प्राप्त करो, कर का तात्पर्य है 'राजस्व आयकर' बिना कर दान दिये जो श्रौत स्मार्त क्रियायें करता है वह अधम फल देनेवाली हो जाती है । अतएव हे तात ! मैंने ऋषिगणों से "आय कर" लिया था । हे वीरेन्द्र ! उन महात्माओं के पास तो तपस्या का ही परम धन था, अतः उन ऋषियों ने वेद विधान पूर्वक मंत्रोच्चारण पूर्वक संकल्प किया हुआ जल हमको दिया, मैंने उस जल को एक कलश में एकत्र करके ब्रह्माजी के उपदेशानुसार योगिराज जनकजी के राज्य की पृथ्वी में गाड़ दिया, मेरी उस तान्त्रिक क्रिया के प्रगोग से राजा जनकजी और इन्द्र में कलह उत्पन्न हो गया, इन्द्र ने कुपित होकर योगिराज की भूमि में अनावृष्टि करदी परन्तु योगिराजों में भी सर्वश्रेष्ठ विदेह महाराज को पूर्व जन्म के पुण्य प्रताप से उन ज्योतिषी पण्डितों

के वाक्य में दृढ़ विश्वास उत्पन्न हो गया, तथा उन योगिराज ने बड़ी तत्परता से हल जोता, उनका समस्त पुण्य पुञ्जीभूत होकर मानों हल के फाल का अग्रभाग स्पर्श करता हुआ उनको कृतार्थ कर देना चाहता था। हे शर्मन् ! उस पुण्य के प्रताप से तथा उस कलश के जल से विविध भांति सुख देने वाली सती शिरोमणि श्री सीता जी प्रकट हुईं तथा बहुत ही सुन्दर वृष्टि हुई, श्रीमिथिला की प्रजा बहुत ही सन्तुष्ट हो गई, धन्य है, धन्य है, जय हो, ऐसा सुखद नाद घोष करते हुये नर नारी अघाते नहीं थे, इस लिये श्रीमहीसुता श्रीजानकीजी की उपासना ही सर्व प्रकारेण श्रेष्ठ है और सुमंगलप्रद परम शुभ है ॥

श्रीसीता-बालिका

वामाङ्के जानकीदेवीं किशोरी कनकोज्वला ।
कैवल्यरूपिणी नित्या चिदानन्दैक विग्रहा ॥
सेयं सीता भगवती ज्ञानानन्द स्वरूपिणी ।
योगिनां रमणे रामे रमते राम वल्लभा ॥
सीतामुखे समुत्पन्ना बालभावेन सुन्दरी ।
सस्मितं वदनं कृत्वा भक्ति भावेन जानकी ॥

—श्रीशिव संहिता

श्रीराम के बाम भाग में कञ्चन वर्ण गौराङ्गी श्रीजानकी देवी विराजमान हैं, श्रीकिशोरी जी नित्य सच्चिदानन्द विग्रहा हैं, ये श्रीसीता भगवतीं ज्ञान तथा आनन्द स्वरूपा हैं, योगियों के हृदय में रमण करने वाले श्रीराम में ये श्रीरामवल्लभा रमण करती है, जो हल की नोंक से बाल्य भाव से मंद मुसकान करती हुई प्रकट हुई हैं, जो श्रीजनकजी की भक्ति भावना से श्री जानकी कहलाई हैं ॥

श्रीसीतानाम की महिमा

रामो हि वश्यो भवतीह सीऽर्ती चोच्चारणादेव जपन्ति सीताम् ।
भृत्यानुगामी भजते प्रियैस्तान् ब्रह्मेशशक्रार्चित राजपुत्रः ॥२८॥

—श्रीमाधुर्यकेलि कादम्बिनी

❀ ॐ श्रीकमलायै नमः ❀

श्रीकमलाष्टकम्

शालैस्तालैस्तमालैर्विविधतरुवरैः सघ्नता वेष्टिताग्रैः-
केका जालाभिरामैः परभृत निसृतैश्चञ्चरीकाढ्यपुष्पैः ।
नानावर्णै विथीभिर्मुखरित विटपैः शोभितेढाह तूनां-
वासो कूलेत्वदीये भवतु मम गृहं भूसुता नेत्रजाते ॥१॥

उञ्छा नागो विहंगो व्रत तिरशाद्वां वली या भुजङ्गो-
गुल्मं कीटस्तुरङ्गो जननि तव तटे स्यामहं कोऽपि कन्दो ।
साम्राज्यं चैकचक्रं जितरिपु पृतनं सर्व पर्याप्त भोग्यं-
भूमौ नैवाभि कांक्षे त्रिदिव सुखमपि त्वत्तटे क्रीडतेऽम्ब ॥२॥

शृण्वन्गाथैस्तवाख्यां मधुर मृदुपदां मञ्जुलार्थां त्रिवर्णां-
निर्विश्य श्रोत्ररंध्रैः कथमपि च सकृत् शृणवतो शोकहन्त्रीम् ।
ब्रह्मा विष्णुः पुरारिस्त्रिदश पतिरथो नारदाद्यर्षि सङ्घो-
गन्तानाद्यापि शक्तो निरवधिगतया त्वन्महत्वस्य मातः ॥३॥

वेदैः साङ्गैरशेषैर्मुनिभि रतितरांसर्वसर्वालयं यन्-
मूर्ध्नि प्रीत्या धृतं सत्प्रति दिवसममलं ध्रीयमाणं सुरेन्द्रैः ।
ज्ञानी-वाणी-भवानी-फणिपतिरसकृत् वर्णितुं नासशक्तो -
भूयात्सोऽयं सुशान्त्यै सुमुखि तवरजो हंतृ तापत्रयस्य ॥४॥

श्रीसीताप्रीति वर्द्धण्यमित गुणगणालंकृतं वैयर्यन्ति-
स्वर्गारोहस्य नेत्राद्धवनि गतिरलं स्यात्तवोर्मिमम शेषैः ।
पापोघैः पीड्यमानान् शरण विरहितान् क्षालितं पंककान्या-
शक्तो सन्ति सुभाषि ह्यभय कर पयं प्रस्थितं कृत्य सुभ्रुः ॥५॥

मीनः कूर्मो जलौका निखिल जलचरो वाऽथ नक्रोऽथ चक्रो-
शैवालं शष्पमिन्दीवरमुरगगणाः सत्ववृन्दं यदस्ति ।

एकान्तेऽस्ति स्वीष्ट प्रद शुभपरिते सच्चिदानन्दरूपा-
मायातीता सुगीता मुनिजन कमले ! ते नमस्ते नमोऽस्तु ॥६॥

कमले-कमले-कमलेऽति रटन् तव नाम महीतल प्रीतियुतम् ।
सुकृती शिर भूषण पूषणवत् जित दूषण विष्णु शिवादिनुतम् ॥७॥

ये मज्जते सलिलबिन्दु सुधात्प्रमृष्टं पानार्थवास कृतकाञ्चन भूमिमध्ये ।
ते जानकी रसिकपाद पदाब्जभृङ्गा भूत्वाप्रयान्ति परस्वर्ग शिवादि पूज्यम् ॥८॥

अष्टकं कमलायास्तु त्रिकालं यः पठेन्नरः । सीताया श्चरणे प्रीतिरतुला तस्य जायते ॥९॥

इति श्रीरघुनाथप्रसाद विरचितायां श्रीसीताराम कैङ्कर्य रत्नमञ्जूषायां संगृहीतं
॥ श्रीवाल्मीकि कृतं श्रीकमलाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

ॐ श्रीकमलायै नमः

श्रीकमलाष्टकम्

ताल-शाल (साखू) तमाल के विशाल श्रेष्ठ वृक्षों से दोनों तटों पर सुशोभित अनेकों लतायें-पुष्पों से सुशोभित पौधें-भ्रमरावली-तथा परोपकारी फलों से सम्पन्न जिसमें अनेकों वर्णों के रङ्ग-रङ्ग के वृक्ष शोभा देते हैं ऐसे आपके तट पर हे श्री कमले ! मेरा भी घर हो, मेरा भी निवास हो, हे श्री भूमिजा के नेत्र कमल से उत्पन्न कमले ! मेरी यही प्रार्थना है ॥ १ ॥

भले पशु हो, चाहे पक्षी हो, चाहे हाथी हो, चाहे भुजङ्ग हो, चाहे कीट-पतङ्ग-वृक्ष-लता-घास-पती-गाय-घोड़ा किसी योनि में मेरा जन्म हो परन्तु हे कमले ! आपके तट पर निवास हो ऐसी कृपा करें । एक छत्र साम्राज्य-शत्रु विजयी सेना सभी पर्याप्त सांसारिक सुख भोग भूमि के दुर्लभ सुख तथा स्वर्ग के आनन्द को भी मैं नहीं चाहता हूं, मैं तो हे मां कमले! आपकी गोद में ही खेलना, आपके तट पर रहना चाहता हूं ॥ २ ॥

आपकी ही कीर्ति सुनना-आपका ही गान गाना-मधुर मङ्गल मङ्गलमय शोक सन्ताप त्रिविध तापहारी आपकी ही पावन कथायें श्रवण रंध्र (कानों) से सुनना बस, यही चाहता हूं । ब्रह्मा-विष्णु-त्रिपुरारी-देवेन्द्र तथा नारदादि ऋषि संघ भी आज तक जिसका पार नहीं पा सके हैं यह तो हे मां कमले ! आपके ही निस्सीम महिमा का प्रभाव है ॥ ३ ॥

साङ्गो पाङ्ग वेद-समस्त मुनिजन देव देवेन्द्र तथा कैलाशपति शङ्कर भी अत्यन्त प्रीति से प्रतिदिन जिस निर्मल रज को अपने शिर पर धारण करते हैं । ज्ञानी-वाणी-भवानी-फणिपति शेष बारम्बार वर्णन करने पर भी जिसकी महिमा का अन्त नहीं पा सके हैं, हे सुमुखि ! नदी

आपकी रज हमारे त्रिविध तापों का हरण कर परम शान्ति प्रदायक बने ॥ ४ ॥

श्रीसीता चरणों में अत्यन्त प्रीति बढ़ाने वाली अनन्त गुणगण सागरी-स्वर्गारोहण न कर कृपा पर वश होकर भूमितल पर आई हुई, ऐसी आपकी तरल तरङ्गों के विना पापों से पीड़ित शरण रहित हम लोगों के पापों को धोने वाली इस संसार में और कौन है ? हे सुन्दर मधुर भाषण से हमारा दुःख हरने में समर्थ कमले ! आपका ही एक पावन जल हम सबको निर्भय कर सकता है, हे सुन्दर कृपा दृष्टि वाली कमले ! इस लिये आपका ही एकमात्र हमको आश्रय है ॥ ५ ॥

मछली-कछुआ-जौंक तथा सभी जलचर तथा मकर-गोह-चक्रवाक-शेवार-घास-कमल-सर्प अथवा कोई भी जीव-जन्तु नर नारी, देहधारी आपके तट पर निवास करते हैं हे अभीष्ट फल प्रदान करने वाली शुभगुण अलंकृत श्री कमले ! वे सब के सब मायातीत-मुनिगण गीत-सच्चिदानन्द स्वरूप आपके परम कृपा पात्र ही हैं। ऐसी हे श्रीकमले ! आपको नमस्कार हो-नमस्कार हो-वारम्वार नमस्कार हो ॥ ६ ॥

हे कमले ! कमले ! हे श्री कमले ! ऐसा पावन नाम जो इस भूमि तल पर रटते हैं वे बड़े पुण्यात्माओं के भी शिरोमणि है, सूर्य के समान सुप्रकाशित हैं। वे सभी दोष दूषणों को जीत लेने वाले हैं, ब्रह्मा-विष्णु शिवादिक भी उनको प्रणाम करते हैं ॥ ७ ॥

हे मां कमले ! चन्द्रमा की सुधा से भी अधिक मधुर आपका जलपान करने की भावना से जो कञ्चन वन की भूमि में निवास करते हैं, वे श्री जानकी रसिक रामजी के श्रीचरणकमलों में भौंरे के समान प्रीति युक्त होकर भगवान शङ्करादि देव पूज्य परम स्वर्ग श्री साकेत धाम को प्राप्त होते हैं ॥ ८ ॥

"श्रीकमलाजी का यह अष्टक जो तीनों काल में पढ़ता है उसको श्रीजानकी जी के श्री चरणों में अतुलनीय प्रीति उत्पन्न होती है ॥"

॥ यह श्रीरघुनाथ प्रसाद विरचिता श्रीसीताराम कैङ्कर्य मञ्जूषान्तर्गत श्री वाल्मीक महर्षि प्रणीत श्री कमलाष्टक सम्पूर्ण हुआ-पत्रा-नं० ५२ ॥

—: श्रीसीता एक महान् तत्त्व :—

लिखितं त्रिविधं सीता कङ्कणाकार शोभने ।
चित्रकाव्यं भवेत्तत्र जानन्ति कवि पण्डिताः ॥
तकारो तत्पदं ज्ञेयं त्वं पदाकार उच्यते ।
असी चासी पदं विद्धि तत्त्वमसि विदो विदुः ॥

❀ श्रीजनकनन्दिन्यै नमः ❀

॥ श्रीजानकी–स्तवराजः ॥

(श्रीसंकर्षणप्रोक्तः)

तां ध्याये स्तवराजेन प्रोक्तरूपां परात्पराम् । आह्लादिनीं हरेः काँचिच्छक्तिं सात्वतसेविताम् ॥

श्रुतिरुवाच—

कीदृशः स्तवराजोऽयं केन प्रोक्तः सुरेश्वर ! । कथ्यतां कृपया देव ! जानकी रूप बोधकः ॥

श्रीसङ्कर्षण उवाच—

ब्रवीमि स्तवराजं ते श्री शिवेन प्रभाषितम् । श्रुतं श्रीवक्त्रतो दिव्यं पावनानां च पावनम् ॥

चकाराराधनं तस्य मन्त्रराजेन भक्तितः । कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुर्हरेः परम् ॥

दिव्यवर्षं शतं वेद विधिना विधिवेदिना । जजाप परमं जाप्यं रहस्ये स्थित चेतसा ॥

प्रसन्नोभूत्तदा देवः श्रीरामः करुणाकरः । मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः ॥

श्रीराम उवाच—

द्रष्टुमिच्छसि यद्रूपं मदीयं भावनास्पदम् । आह्लादिनींपरां शक्तिं स्तुयाः सात्वत सम्मताम् ॥

तदाराध्यस्तदा रामस्तदधीनस्तया विना । तिष्ठामि न क्षणं शम्भो ! जीवनं परमं मम ॥

इत्युक्त्वा देवदेवेशो वशी करणमात्मनः । पश्यतस्तस्य रूपं स्वमन्तर्धानं दधौ प्रभुः ॥

श्रुत्वा रूपं तदा शंभुः तस्याः श्रीहरिवक्त्रतः । अचिन्तयत्समाधाय मनः कारणमात्मनः ॥

अस्फुरत्कृपया तस्य रूपं तस्याः परात्परम् । दुर्निरीक्ष्यं दुराराध्यं सात्वतां हृदयङ्गमम् ॥

आश्रयं सर्वलोकानां ध्येयं योगि विदां तथा । आराध्यं मुनि मुख्यानां सेव्यं संयमिनांसताम् ॥

दृष्ट्वाश्चर्यमयं सर्वं रूपं तस्याः सुरेश्वरः । तुष्टाव जानकीं भक्त्या मूर्त्तिमतीं प्रभाविनीम् ॥

इस टीका के विषय में—

—❀ नम्र--निवेदन ❀—

मैं अल्पज्ञ हूं। मेरी योग्यता ऐसी नहीं है कि मैं संस्कृत भाषा के किसी भी ग्रन्थ का अनुवाद कर सकूं। परन्तु मेरे नाम से "श्रीजानकी स्तवराज" का यह अनुवाद प्रकाशित हो रहा है। इसकी वास्तविक वृत्ति इस प्रकार है:—

सविशेष ब्रह्मनिष्ठ–विद्वद्वरिष्ठ–सकल सद्गुणगण गरिष्ठ–अपर वशिष्ठ सन्त शिरोमणि श्री अयोध्या जानकीघाट निवासी **श्री १०८श्रीस्वामी अनन्त पं० श्रीरामवल्लभाशरण जी महाराज** से मैं उक्त स्तवराज का पाठ पढ़ता था। तथा जिस प्रकार अन्वय पूर्वक वे कृपा करके श्लोकों की व्याख्या करते जाते थे मैं हृदयङ्गम करने के साथ ही लिखता भी जाता था। इस प्रकार इस टीका की रचना हुई। अस्तु इस कृति का श्रेय उन्हीं श्री स्वामी जी को है। मैं तो लेखक मात्र हूं। बड़ों के सम्पर्क से छोटे भी सम्मान को प्राप्त होते हैं—"भवअङ्ग भूति मसान की सुमिरत सोहावनि पावनि।" बुद्धिभ्रम–दृष्टि भ्रम आदि के कारण टीका में जहां कहीं किसी प्रकार की त्रुटि रह गई हो उसे मेरा ही दोष समझना चाहिये और उसे सुधार लेना चाहिये।

मिति ज्येष्ठ शुक्ला ३ मङ्गलवार सं० १९८५ वैक्रमाब्द	विनीतः— **पुरुषोत्तम शरण** श्रीसद्गुरु सदन–सरयूतट पापमोचन घाट श्री सिया मोहिनी–निकुञ्ज, श्री अयोध्या जी

श्रीजानकीस्तवराज टीका–प्रारम्भ

वेद–शास्त्र–सन्तों द्वारा जिनके स्वरूप का सुन्दर वर्णन किया गया है, उस परात्परा आनन्द स्वरूपा परमाह्लादिनी सात्वत भक्तों द्वारा सेवित श्रीहरि की किसी विशेष शक्ति को इस स्तवराज द्वारा ध्यान करता हूं॥ १ ॥

श्री श्रुतिरुवाच–श्रुतियों ने कहाः—

हे सुरेश्वर! हे देव! श्री जानकी जी के स्वरूप का बोध कराने वाला यह स्तवराज कैसा है? किसने कहा है! कृपा करके कहिये॥ २ ॥

श्रीसङ्कर्षण उवाच–श्री सङ्कर्षण जी बोलेः—

मैं श्रीरामजी के मुख से सुना हुआ, श्रीशिवजी के द्वारा कहा हुआ पावनों को भी पावन करने वाला यह दिव्य स्तवराज तुमसे कहता हूं॥ ३ ॥

श्रीरामजी के परात्पर स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करने के लिये श्रीशिवजी ने किसी समय भक्ति भावना पूर्वक श्रीरामजी का मन्त्रराज के द्वारा आराधन किया है॥ ४ ॥

एकान्त स्थान में एकाग्रचित्त से वेद विधि को जानने वाले श्रीशिवजी ने दिव्य सौ वर्षों पर्यन्त परम जाप्य श्रीराम तारक मन्त्र का जप किया॥ ५ ॥ तब भक्तजनों के परम भजनीय करुणानिधान प्रभु श्रीरामचन्द्रजी मन्त्र के आराध्य देव के रूप से श्रीशिवजी पर प्रसन्न हुए॥ ६ ॥

श्रीराम उवाच–श्रीरामजी ने कहाः—

आप मेरे भावनास्पद जिस दिव्यस्वरूप का दर्शन करने की इच्छा करते हैं उसको देखना हो

तो भक्त जन (रसिकजनों द्वारा आराध्य) मेरी आह्लादिनी परात्परा शक्ति की स्तुति करिये ॥७॥ हे शिवजी ! मैं उनके साथ ही आराधनीय हूँ, उन्हीं से हमको आनन्द है, उन्हीं के हम आधीन हैं, उनके बिना मैं क्षण भर भी कहीं अन्यत्र नहीं रहता हूँ, क्योंकि यही हमारी परम जीवन है ॥ ८ ॥ देवताओं के भी देव समर्थ स्वामी प्रभु श्रीरामजी ने अपने वशीकरण का यह उपाय बताकर उन श्रीशिवजी के देखते देखते ही अपने स्वरूप को अन्तर्ध्यान कर लिया ॥ ९ ॥ तब श्रीशिवजी ने उन श्रीजानकी जी के स्वरूप को श्रीरामजी के मुख से सुनकर अपने कारण रूप मन को एकाग्र करके श्री किशोरी का चिन्तवन किया ॥ १० ॥ जिसका दर्शन तथा आराधन अत्यन्त कठिन है, महान् कष्ट साध्य है, जो भक्त वैष्णवों के हृदय में परम प्रिय निवास करने योग्य है, जो सभी लोकों का परम आश्रय है, जो श्रेष्ठ योगियों के ध्यान करने योग्य है । जो मुख्य मुख्य मुनिजनों का आराध्य है, तथा जो जितेन्द्रिय महात्माओं का परम सेव्य है, उन श्रीजानकी जी के परात्पर रूप का उन्हीं की कृपा से श्रीशिवजी को प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त हुआ ॥ १२ ॥ श्री महादेव जी भगवान् शङ्कर श्री जानकी जी के परम आश्चर्य स्वरूप उस स्वरूप का सम्पूर्ण दर्शनकर भक्ति के वशीभूत होकर मूर्तिमान स्वरूप धारण किये हुए प्रकट हुई अत्यन्त प्रभावशालिनी श्री जानकी जी को प्रसन्न करने के लिये इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ १३ ॥

॥ स्तुतिप्रारम्भः ॥

वन्दे विदेहतनया पद पुण्डरीकं, कैशोर सौरभ समाहृत योगिचित्तम् ।
हन्तुं त्रितापमनिशं मुनिहंस सेव्यं, सन्मान शालि परिपीत पराग पुञ्जम् ॥१४॥

पादस्य यावक रसेन तलं सुरक्तं, सौभाग्य भावमिदं हि परं जनानाम् ।
युक्ती कृतं सुभजतां तव देवि नित्यं, दत्ताश्रयं सुमनसां मनसानुरागम् ॥१५॥

पादाङ्गुली नखरुचिस्तव देवि रम्या, योगीन्द्र वृन्द मनसा विशदा विभाव्या ।
त्रैताप क्लान्त्युपशमाय शशांक कान्ति, दोषेण किं समुपयाति तुलां युतासा ॥१६॥

मञ्जीर धीर निनदं कलहंस काली, हासाय सा भवति भावयति त्वदीयम् ।
किञ्चापरं रसिकमौलि मनो नियन्तुं, दृष्टं मया परम कौशलमत्र तस्य ॥१७॥

सिद्धीश बुद्धिवर रञ्जन गूढ़गुल्फौ पादारविन्द युगलौ जनताप वर्गौ ।
विन्दन्ति ते त्रिभुवनेश्वरि ! भावसिद्धिं, ध्यायन्ति ये निखिल सौभग भानुभाजो ॥१८॥

हेमाभिवर्द्धित विभूषण भूषितन्ते, त्रैलोक्य तेज इव मंजुल पुञ्ज भूतम् ।
भावामि सुन्दरि, पदं सरसीरुहाभं, भीता ऽभयप्रदमनन्त मनोभिध्येयम् ॥१९॥

चक्राभ हारि सुनितम्ब युगं भवत्याः, ध्येयं सुधीभिरनिशं रसनाभिरक्तम् ।

गम्यममरेश नताङ्घ्रि पद्मे ॥२०॥
ध्यानास्पदं रघुपतेर्मनसो मुनीनां, भावैक
कौशेयवस्त्र परिणद्धमलं कृतं ते, कातं स्वराशनि मणि प्रवर प्रबेकैः ।
रत्नोत्तमै रसनया ग्रह कान्तिमद्भिर्भास्वन्ति निर्मित तया स्वधियन्ति मध्यम् ॥२१॥
अश्वत्थपत्र निभमम्बधियोदरन्ते, भाव्यं भवाब्धि तरि केवल काल नाशे ।
भूयो न भावि जननी जठरे निवासस्तेषां, मनोधरणिजेऽत्र सुलग्नमासीत् ॥२२॥

सद्यः सिद्धिप्रद नूतन सुगन्ध से योगियों के चित्त को हरण करने वाले त्रिविध ताप को नष्ट करने वाले, मुनिजन हंसों द्वारा रात दिन सेवनीय-भक्तों के मनरूपी भ्रमरों द्वारा भली-भांति रस पिये जाने वाले पराग पुञ्ज से संयुक्त श्रीविदेह राजकुमारी जू के श्रीचरण कमलों की मैं वन्दना करता हूं ॥ १४ ॥

हे देवि ! आपके चरणों के तरवे महावर से रंगे हुए सुन्दर लाल-लाल हैं तथा यही भक्तों के परम सौभाग्य का मन्दिर है, सुन्दर मन लगाकर नित्य प्रति भजन करने वालों को आपने जिसमें आश्रय दिया हुआ है, उन प्रेमी जनों ने मन से अपने अनुराग को भी मानों उसमें मिला दिया है जिससे अधिक लाल हो गये हैं, अर्थात भक्तों का अनुराग ही महावर बनकर आपके चरणों के तरवों में लग गया है ॥ १५ ॥

हे देवी ! श्रेष्ठ योगिजनों के मन द्वारा भावना की गयी आपके श्रीचरणों की अंगुलियों के नखों की स्वच्छ कान्ति अत्यन्त रमणीय हैं, क्या दोष कलङ्क से युक्त वह चन्द्रमा की कान्ति कभी त्रिविध ताप नष्ट करने के लिये उसकी समानता को प्राप्त कर सकती है ? अभिप्राय यह है कि आपके चरणों की अंगुलियों के नख चन्द्र सर्वदा निर्दोष हैं दिव्य हैं, उसकी तुलना सकलङ्क मलिन चन्द्रमा कैसे कर सकता है। अर्थात् कभी नहीं कर सकता ॥ १६ ॥

हे देवि ! वह सुप्रसिद्ध छोटे-छोटे हंसों की पंक्ति आपके नूपुरों की गम्भीर ध्वनि की समानता प्राप्त करने की भावना से हास्यास्पद हो रही है, क्योंकि यहाँ पर मैंने रसिक शिरो-मणि श्रीराम के मन को वश में करने के लिये उन नूपुरों के नाद की अत्यन्त चातुरी भी देखी है। जो उन कल हंसों में कहीं भी देखने को नहीं मिलती ॥ १७ ॥

हे त्रिभुवनेश्वरी ! सर्व सिद्धियों के स्वामी श्रीरामजी की श्रेष्ठ बुद्धि को प्रसन्न करने वाले गूढ़ गुल्फों से युक्त, भक्त जनों के मोक्ष स्वरूप सम्पूर्ण सौन्दर्य तथा सौभाग्य के अद्वितीय दिवा-कर आपके युगल श्रीचरण कमलों का जो ध्यान करते हैं वे प्रभु की दिव्य भाव सिद्धि प्राप्त कर लेते हैं ॥ १९ ॥

हे सुन्दरी ! सुवर्ण रचित विभूषणों से विभूषित तीनों लोक के तेज के पुञ्ज स्वरूप मञ्जुल सुन्दरता युक्त कमल के समान प्रभा सम्पन्न-भयभीतों को अभय प्रदान करने वाले-अनन्त प्रभु

श्रीराम के मन में भी निरन्तर ध्यान में आने वाले आपके श्री चरणों की मैं भावना करने की इच्छा करता हूं ॥ १६ ॥

हे ब्रह्मादिक देवेन्द्रों द्वारा नमस्कृत चरण कमल वाली ! चक्र की कान्ति को भी हरण करने वाले-सुबुद्धिमानों द्वारा रात दिन ध्यान करने योग्य-क्षुद्रि घण्टिका (छोटी-छोटी घुंघ-रियों) से युक्त-श्रीरघुपति के मनमें वारंवार ध्यानास्पद-केवल मुनिजनों की भावना में ही आने वाले आपके सुन्दर युगल नितंबों की मैं भावना करता हूं ॥ २० ॥

हे देवि ! भक्त लोग रेशमी वस्त्र से सुशोभित-सोना-हीरा तथा उत्तमोत्तम मणि मुक्ताओं से अलंकृत कान्तिमान् ग्रहों के समान श्रेष्ठ रत्नों से निर्मित दिव्य डोरीसे सुप्रकाशित आपके कटिभाग का ध्यान हम करते हैं ॥ २१ ॥

हे संसार समुद्र को तरने के लिये नौका रूपी हे काल को नाश करने वाली एक ही महा शक्ति ! हे पृथिवी की प्यारी पुत्री ! हे मां ! पीपल के पत्ते के समान सद् बुद्धि से भावना करने योग्य जो आपका उदर है, उसमें जिनका मन सुन्दर रूप से लग गया है उनका फिर माता के गर्भ में निवास नहीं होता-अर्थात् वे परमपद पाकर इस संसार में कभी नहीं आते ॥ २२ ॥

नाभी ह्रदं हरिमनः करिणः कृशांशो, पुष्टिप्रदं प्रचलितं त्रिवलीं तरङ्गम् ।
राजि सुशैवलनिभं भ्रमिभूतरोम्णां, शान्त्यै तव त्रितपतामति भावयाम ॥२३॥

नीलाभकञ्चुक मणीन्द्र समूह निष्कै, र्वक्षोज युग्ममति तुङ्गमलं कृतन्ते ।
हारैर्मनोहर तरैस्तरुणि ! क्षितीजे !, सौदर्यवारिनिधि वारितरङ्ग सङ्गम् ॥२४॥

बाहू मृणालमदखण्डन पण्डितौ ते; भीताभयप्रद वदान्यतमौ जनानाम् ।
रुक्मांगदाङ्कित विटङ्कित मुद्रिकौ तौ, हैरण्य कङ्कण धृतावलयौ भजामः ॥२५॥

कण्ठं कपोत तरुणी गलकान्ति मोषं, भूषैरनेकविधभूषितमम्ब तुभ्यम् ।
ध्यायेम मानस विशुद्धिकृते कृपालो; योगीन्द्र भावितपदे शमदे शरण्ये ॥२६॥

वक्त्रेन्दुमिन्दु चयखण्डित मंडितांशुं; खण्डांश पण्डितमनः परिदण्डिताशम् ।
मन्मान साब्ज मुदितद्युतिदं वरेण्यं, रामाक्षि तारक चकोरमहं भजे ते ॥२७॥

ताम्बूल राग परिरञ्जित दन्तपंक्ति, प्रद्योतिताधरमधः कृतबिम्ब रागम् ।
ईषत्स्मितद्युति कटाक्ष विकाशिताशं; वक्त्रं परेशनयनास्पदमा भजे ते ॥२८॥

नासाग्र मौक्तिक फलं फलदं परेशे, ध्यायन्ति ये च निज जाड्य विनाश हेतोः ।
त्रैलोक्य निर्मलपदं सुखदं त्वदीयं, स्वेच्छाभि कांक्षिण इदं बहुशोरसज्ञाः ॥२९॥

ज्ञानं निरञ्जनमिदं विवदन्ति ये ते, मुह्यन्ति सूरि निवहास्तरुणी कटाक्षैः ।
नालोकयन्ति नितरां तव देवि तावत्; दीर्घायुषाक्षि युग्मं जनरंजितं ते ॥३०॥
भ्रूवल्लरी विलसितं जगदाहुरीशे, व्यासादयो मुनिवरास्तुत एव नित्यम् ।
नाशाय तस्य तरुणी तिलके त्वदीया, पाशीकृता हरिमनो मृगबन्धनाय ॥३१॥
भालं विशालमति सौभग भाजनं ते; सिन्दूर बिन्दु रुचिरद्युति दीप्तिमन्तम् ।
पिण्डीकृतः किमुतराग इतीव तस्मिन्, प्रद्योतेते जननि जागत जन्मभाजाम् ॥३२॥

हे देवि ! हम सब तीनों तापों की शान्ति के लिये श्रीरामजी के मन रूपी हाथी की कृशता (दुर्बलता) को पुष्ट करने वाले–जिसमें त्रिवली रूपी तरङ्गें लहराती हैं तथा सुन्दर शेवार के समान चारों ओर घूमी हुई रोम राजी (केशों की पंक्ति) है, ऐसे आपके नाभी कुण्ड की अत्यन्त प्रेम से भावना करते हैं ॥ २३ ॥

हे भूमिनन्दिनी ! हे दिव्य तरुणी ! श्रीजानकीजी ! नील कान्ति वाली कञ्चुकी और श्रेष्ठ मणि मुक्ताओं से रचित परम मनोहर महा मूल्य हारों द्वारा सुशोभित्त अति ऊंचे सौन्दर्य समुद्र के जल तरङ्गों के सङ्गम रूप आपके युगल वक्षोजों की मैं भावना करता हूँ ॥ २४ ॥

हे देवि ! हम मृणाल (कमल तन्तु) की कोमलता के मद को हरण करने में महान् पण्डित अर्थात् कमलनाल से अति सुकुमार भक्तजनों को तथा संसार के भय से भयभीत जनों को अभय दान देने में अति उदार सुवर्ण रचित अङ्गद (बाजू बन्द) कङ्कण--चूड़ी तथा अंगुठी–मुद्रिका-दिक से सुशोभित आपके दोनों बाहुओं का भजन करते हैं ॥ २५ ॥

हे कृपामयी ! योगिन्द्रों द्वारा भावना किये जाने वाले चरणारविन्द वाली ! हे शान्ति प्रदे ! हे शरणागत रक्षिके ! हे मां ! हम अपने मन को शुद्धि करने के लिये कपोती (कबूतरी) के गले की कान्ति को लज्जित करने वाले अनेक प्रकार के आभूषणों से अलंकृत आपके मधुर कण्ठ का ध्यान करते हैं ॥ २६ ॥

हे देवि ! चन्द्रों के समूह के सौन्दर्य का मद खण्डित करने वाले–चन्द्रिका के किरणों से सुमण्डित–न्याय शास्त्र के पण्डितों के मन को परिदण्डित करने वाले, भक्तों के मानसरूपी कमल को प्रकाशित करने वाले, वरणीय श्रीरामजी के नेत्रों के तारों को चकोर बना देने वाले आपके श्री मुखचन्द्र का मैं भजन करता हूं ॥ २७ ॥

"न्याय शास्त्र के पण्डितों के मन को परिदण्डित करने वाला मुखचन्द्र कहा गया है उसका अभिप्राय यह है कि न्याय शास्त्री अनुमान लगाते लगाते कहीं प्रभु की कृपा से श्री किशोरी जी के मुखचन्द्र का दर्शन करलें तो उनको हठात् वरवश कहना पड़ेगा कि हमने व्यर्थ ही इतने दिनों तक तर्क की कर्कश कसौटी पर ईश्वर स्वरूप को कसने का परिश्रम किया, यह तो अत्यन्त मधुराति मधुर स्वरूप है ।"

हे देवि ! ताम्बूल के रङ्ग से रङ्गी हुई दन्त पंक्ति से प्रकाशित तथा बिम्बाफल की लाली को भी लज्जित करने वाले अधरों से मन्द मुसकान की कान्ति जिसमें झलक रही है, एवं कृपा पूर्ण कटाक्ष से सब दिशाओं को विकसित करने वाला तथा श्रीरामजी के नेत्र का विश्राम स्थान जो आपका मुख है उसका मैं भजन करता हूँ ॥ २८ ॥

हे देवि ! ये अनेकों प्रकार के रस को जानने वाले प्रेमीजन आपके सुखप्रद, तीनों लोकों के निर्मल वस्तुओं से भी विलक्षण सर्वश्रेष्ठ निर्मल पद को पाने की इच्छा रखने वाले अपनी आकांक्षा पूर्ण करने के लिए तथा अपनी जड़ता का विनाश करने के लिये एवं श्रीरामजी में प्रेमरस तथा भक्ति देने वाले आपकी नासिका के अग्र भाग में लटकते हुये इस मुक्ताफल (नकबेसर) का ध्यान करते हैं ॥ २९ ॥

हे देवी ! ये तत्वज्ञानी विद्वानों का समूह "यह निरञ्जन ज्ञान है" ऐसा विवाद करते हैं, वे जब तक अञ्जन से रञ्जित आपके कजरारे दोनों नयनों को पूर्ण रूप से अवलोकन नहीं कर लेते हैं (अर्थात् आपकी कृपा कटाक्ष का आश्रय नहीं ले लेते हैं) तब तक दीर्घायु पर्यन्त साधन करते हुए भी तरुणियों के कटाक्ष से मोहित होते रहते हैं ॥ ३० ॥

हे तरुणियों की तिलक ! हे ईश्वरी ! श्री व्यासादिक मुनि श्रेष्ठ नित्य प्रति स्तुति करते हुए यही कहते हैं कि कि—आपकी भ्रू वल्लरी से ही जगत् की उत्पत्ति (विलास) तथा उसका विनाश होता रहता है तथा वही आपकी भ्रूवल्लरी (नेत्र कटाक्ष) श्रीरामजी के मनरूपी मृग को बांधने के लिये पाश (रस्सी) का काम भी करता है ॥ ३१ ॥

हे जननी ! सिन्दुर के बिन्दु की सुन्दर कान्ति से सुप्रकाशित आपका विशाल भाल (ललाट) अत्यन्त सौन्दर्य्य का निवास स्थान है, हे माता ! संसार में जो जन्म धारण करने वाले अनुरागी प्रेमीजन हैं, क्या उनका प्रेम एकत्रित होकर उस भाल में अत्यन्त प्रकाशित तो नहीं हो रहा है ! ॥ ३२ ॥

आदर्श वर्तुल कपोल विलोल लोलं, कर्णावतंस युगलं जनजाड्य नाशम् ।
सूर्यादि कान्ति हरमाश्रयमोजसान्ते, तीव्रंधिया धरणिजे स्वधियन्ति धीराः ॥३३॥
कालोबिभेति जगतामति भक्षकस्ते, जैवातृको भवदसीम गुणो यतोऽसौ ।
सर्वाति वल्लभतया भजनीयरूपे, मन्यावहे हरिरिति श्रुति भूष सारम् ॥३४॥
सीमन्तमम्ब तव सुन्दरतातिऽसीम, मुक्ताविभूषितमलं समभाग भाजम् ।
निःसीमतापद कृते यतयो यतन्ति, जानीमहे महित वन्दित सोम पूर्ते ॥३५॥
कालाहि भीतिभजतामहि भोगभिन्ना, पाश्चात्यरेश्वरि सतामवतो सदा नः ।
एणी दृशस्तव विशालतरानुवेणी, दर्भाग्रभाग सदृशी सुदृशां त्रिलोक्याः ॥३६॥

साटी सुसूक्ष्मतरातिं गतानि नीला, सौवर्ण सूत्र कलिता कृपया वृताते ।
भर्तुः स्वरूपमनुभावयतां जनानां, प्रीत्यै करोषि परदेवि यदापिधानम् ॥३७॥

हे धरणितनये ! धीर पुरुष दर्पण के समान आपके गोल कपोलों में अतिशय चञ्चल अर्थात् बारंबार हिलते डुलते, भक्तों की जड़ता का विनाश करने वाले, सूर्यादि ग्रहों की कान्ति को हरण करने वाले-तेजों के आश्रयभूत-आपके कर्णभूषणों को अपनी तीव्र बुद्धि से ध्यान द्वारा प्राप्त करते हैं ॥ ३३ ॥

हे भजन करने योग्य स्वरूपवाली श्रीकिशोरीजी ! सम्पूर्ण जगत् का अत्यन्त भक्षण करने वाला काल भी आप से डरता है । अतएव सबको अतिप्रिय होने के लिये ताप हरण करनेवाले हरि की पदवी पाने के लिये चन्द्रमा निस्सीम गुण वाले आपके श्रवणों का भूषण (कर्णफूल) बना हुआ है, ऐसा हम मानते हैं ॥ ३४ ॥

हे महामहिम देववन्दितों की सीमा स्वरूप प्रत्यक्ष मूर्ति ! शिर पर समानभाग से विराजमान-मोतियों के गुच्छों से विभूषित-सुन्दरता की असीम पराकाष्ठा-आपकी सीमन्त (माँग) को सनकादिक मुनिजन श्रेष्ठ सीमारहित पद की प्राप्ति के लिये अतिशय यत्नपूर्वक ध्यान करते हैं, ऐसा हम जानते हैं ॥ ३५ ॥

हे परमेश्वरी ! कालरूपी सर्प के भय से भजन करने वाले सज्जनों की रक्षा करनेवाली तीनों लोकों से अति उत्तम विलक्षण नेत्र वाली-सुन्दर देवनायिकाओं के मध्य में मृगी के समान सर्वश्रेष्ठ नयनों वाली-सर्प के समान कोमल श्याम सुचिक्कन-तथा दर्भ के अग्रभाग के समान आपकी विशाल वेणी हमारी सदा रक्षा करे ॥ ३६ ॥

हे परात्परा देवी ! अपने प्रिय भर्ता श्रीरामजी के स्वरूप का भजन करनेवाले भक्तजनों की प्रीति के लिये जिसको आप धारण करती हो वह साड़ी आपकी कृपा से पूर्ण है, सोने के सूत्र डोरा से रचित है, अति नील रङ्ग की चमकती हुई है तथा अति सूक्ष्म (पतली-हल्की) झीनी है ॥ ३७ ॥

पारेगिरां गुणनिधे ! श्रुतयोवदन्ति, रूपं त्वदीयमपरं मनसोप्यगम्यम् ।
साक्षात्कथं सरसिजाक्षि भवेद्दते ते, बुद्धौकृपामनु कृशोदरि मादृशांतत् ॥३८॥
किंचित्रमत्र जननि ! प्रभयाप्रकाश्यं, विश्वं वदन्ति मुनयस्तव देवि ! देवाः ।
जाताश्रयस्त्रिभुवनैर्गु णतोऽभिवन्द्यस्त्राणादिकर्म विभवं परमस्य यस्याः ॥३९॥
वेदास्त्वाम्ब ! विवदन्ति निजस्वरूपं, नित्यानुभूति भव भावपराः परेशैः ।
निर्णेतुमध यतयस्तपसा यतन्ते, बोधाय पादसरसीरुह युग्म भृङ्गाः ॥४०॥

जातंत्वदेव नितरां जगतांनिदानं, मन्यावहे तदिदमम्ब ! कृतं श्रुतीनाम् ।
सर्वं यतः खलुविचेष्टित माशु शक्तेः, कार्यं हि कारणगुणा नवलम्ब्य विद्यात् ॥४१॥
जानीमहे जननि ! ते नयनारविन्द, स्योन्मीलनेऽजनिजगत् क्षयस्तन्निमीलनात् ।
वैषम्यशून्यसमतां समुपागते यत्तादस्य, पालनमसंशयमस्य नूनम् ॥४२॥
ज्ञातं त्वदीयमपरं चरितं विशालं, भावं भवे ननु निजे प्रकटी करोषि ।
प्रेमार्णवैः प्रथमतः परमानुभावं, भाव्यं पदाब्जमनिशं स्वजनैरतःते ॥४३॥
येषामदः परमवस्तु च तज्जनानां, प्रद्योतते जनकजा चरणारविन्दम् ।
सर्वं समीक्ष्य इह कर्म मनो वचोभि र्ब्रह्मस्वरूपमति दुर्लभतानुसेव्यम् ॥४४॥
किं दुर्लभं चरणपङ्कज सेवया ते; पूर्णारमन्ति रमणीयतया त्रिलोक्याम् ।
वस्तु प्रकाशविशदं हृदये त्वदीयं, तेषामहो किमुतसाधन कोटि यत्नैः ॥४५॥
धन्यास्त एव तव देवि पदारविन्दं, स्पन्दायमान मकरन्द महर्निशं ये ।
भृङ्गायमान मनसोनितरां भजन्ते, भावावबोध निपुणाः परदेवतायाः ॥४६॥
पादाब्ज राग परिरञ्जित चित्तभृङ्गो, येषां समीक्ष्य इह जातमिदं स्वरूपम् ।
तेषां न किं प्रवदते परितो वरिष्ठं, साध्यं भवेदिह परत्र न किञ्चिदन्यत् ॥४७॥

हे गुणनिधे ! हे कमलनयनी ! हे कृशोदरी ! वेद भी आपके अपर रूप को वचन से पर तथा मन से भी अगम्य कहते हैं, वह रूप आपकी कृपा के बिना हम सबकी बुद्धि में साक्षात् अनुपम को कैसे प्राप्त हो सकता है ॥ ३८ ॥

हे देवी ! हे जननी ! शास्त्र तत्त्व का मनन करने वाले मुनिजन श्रेष्ठ तथा दिव्य ज्ञान सम्पन्न देव देवेन्द्र विश्व को आपकी प्रभा से प्रकाशित कहते हैं, तथा विश्व के संरक्षण आदि कर्म को आपका सर्वोत्कृष्ट वैभव बतलाते हैं, तब आपका आश्रय लेने वाला शरणागत प्रेमीजन उत्तमोत्तम गुणोंसे त्रिलोकी में सर्व प्रकार से वन्दनीय हो जाय तो इसमें क्या आश्चर्य है ॥३९॥

हे माँ ! वेद सर्वश्रेष्ठ ईश्वरों के सहित आपकी नित्य अनुभूति से उत्पन्न हुए भाव में परायण होकर आपके निज स्वरूप का वर्णन करते हैं । उसी स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने का निर्णय करने के लिये श्रेष्ठ मुनिजन यतीन्द्र आपके युगल श्रीचरणों के भ्रमर बनकर आज तक तपस्या के द्वारा प्रयत्न करते हैं ॥ ४० ॥

हे अम्ब ! जगत् का अतिशय आदि कारण महतत्त्वादिक आप से ही उत्पन्न हुआ है, यह श्रुतियों का अभिप्राय हम मानते हैं, यह सम्पूर्ण जगत् आदि शक्ति की चेष्टा का ही शीघ्र फल स्वरूप प्रत्यक्ष दीखता है, क्योंकि कार्य अपने कारण के गुणों का अवलम्बन ग्रहण करके स्थिर

होता है, शक्ति के बिना किसी की चेष्टा देखने में नहीं आती है, इस लिये श्रीरामजी की परा शक्ति रूपा आप ही जगत् का कारण हैं यह श्रुतियों का अभिप्राय है॥ ४१ ॥

हे जननी ! आपके नयनारविन्द को खोलने से जगत् उत्पन्न होता है, उनके बन्द करने से जगत् का विनाश हो जाता है, तथा वैषम्य शून्य खुलने तथा बन्द होने की क्रिया से विरत होकर एकरस समता पूर्वक देखने से इस जगत् का निःसंशय पालन होता है, ऐसा निश्चय ही हम जानते हैं ॥ ४२ ॥

हे देवि ! आपका और भी एक चरित्र हम जानते हैं वह यह है कि आप अपने प्रकाश-मय चिन्मय स्वरूप से भक्तों के हृदय में महाभाव प्रकट करती हैं, इसी कारण वे सज्जन पहिले ही से परम प्रकाश सम्पन्न आपके श्री चरणारविन्दों को भजन करने योग्य समझ जाते हैं ॥४३॥

हे श्री जनकदुलारी जू ! आपके कृपा पात्र जिन भक्तों को आपके श्रीचरणारविन्द ही परम पुरुषार्थ अर्थात् परम तत्व के रूप से प्रकाशित हो गये हैं उन भक्तों को इस संसार में कर्म-मन-वचन द्वारा अति दुर्लभता से सेवन करने योग्य ब्रह्म स्वरूप की प्राप्ति हो जाती हैतथापि वे केवल निर्गुण ब्रह्म स्वरूप को नीरस मानकर परम रस स्वरूप श्रीजनककिशोरी जू के चरणारविन्द का ही भजन करते हैं ॥ ४४ ॥

हे श्रीजू ! आपके चरणारविन्दों की सेवा करने से क्या दुर्लभ है ? आपके भक्तजन रम–णीयता से परिपूर्ण होकर त्रैलोक्य में रमण करते हैं (अर्थात् सर्वत्र आपकी सेवा ही परम रमणीय मानकर आनन्द में निमग्न रहते हैं) जिनके हृदय में निर्मल प्रकाश स्वरूप वस्तु (ब्रह्म स्वरूपा) आश्चर्यमय आपके चरणारविन्द प्रकाशित हैं उनको अन्य तुच्छातितुच्छ करोड़ों साधन करने के प्रयत्न से क्या प्रयोजन है ? ॥ ४५ ॥

हे देवी ! भाव के यथार्थ ज्ञान में निपुण जो भक्त परम देवता रूप आपके प्रेमरस धारा बहाते हुये चिन्मय मकरन्द परिपूर्ण चरणारविन्दों के दिव्यामृत पान करने के लिये अपने मन को भ्रमर बनाकर सेवन करते हैं वे ही यथार्थतः धन्य हैं ॥ ४६ ॥

हे श्री किशोरी जू ! इस ध्यान गम्य आपके स्वरूप को प्रकट देखकर आपके चरणार–विन्दों के अनुराग से इस संसारमें जिन भक्तों का चित्त भ्रमर बन गया है उनको इससे भी कोई श्रेष्ट वस्तु है ऐसा कौन कह सकता है ? कौन बता सकता है। तब उन भक्तों के लिये इस लोक में तथा परलोक में अन्य कोई भी वस्तु साध्य नहीं रह जाती है, अर्थात् सबकुछ प्राप्त हो जाता है, कुछ भी असाध्य नहीं रहता ॥४७॥

चुम्बन्ति चिद्घनमहो मकरन्दमस्या, दैवैर्मुनीन्द्र निचयैरति दुर्लभं ते ।
पादाब्जयोरति विकाश विलासबोधः, स्यादेव देवि तवकान्त निजस्वरूपे ॥४८॥
यावन्नते सरसिज द्युति हारिपादे, नस्याद्रतिस्तरु नवाङ्कुर खण्डिताशे ।
तावत्कथं तरुणिमौलिमणे जनानां; ज्ञानं दृढं भवति भामिनि रामरूपे ॥४९॥

साक्षात्तपो व्रत यमैर्नियमैः समीहे, कर्तुं कृपामृतमिह प्रसभंस्वरूपम् ।
नाथस्य ते श्रुतिवचो विषयं कथं स्यान्मूढो वृथोत्सृजति देवि सुखान्यमूनि ॥५०॥
योगाधिरूढ़ मुनयो हरिपादपद्मे, ध्यायन्ति ये चरणपङ्कज युग्ममन्तः ।
वाञ्छन्ति विघ्नशततोऽप्यनिवार्यमाणां, भक्तिभवाब्धि तरणाय कृपापयोधे ॥५१॥
चार्वङ्गिते चरणचारण वन्दि संगं, मह्यं विदेहतनये परिदेहि नान्यम् ।
याचे वरं वरविदां वरदे भवत्या, येनामुना तव धवे मम रञ्जनास्यात् ॥५२॥
याचेऽहमम्ब रघुनन्दन मूर्त्तिभावं, सार्द्धं त्वयाति दृढमञ्जलिना विशेषम् ।
त्वं देहि वेत्तृवरदे मुनिसंघमुख्या, मन्यन्ति वल्लभतरां स्वपते भवन्तीम् ॥५३॥

हे देवी ! जो भक्त-देवता तथा मुनीन्द्र समूह को भी अति दुर्लभ आपके श्रीचरणारविन्दों का चिद्घन मकरन्द पान करते हैं उनको आपके कान्त श्रीरामजी के निज स्वरूप में अति प्रकाश युक्त सच्चिदानन्दमय विलास का यथार्थ ज्ञान हो ही जाता है ॥ ४८ ॥

हे तरुणियों की शिरोमणी ! जब तक इन वृक्षों के नवीन अंकुर की शोभा को खण्डन करने वाले-कमल की द्युति हरने वाले-आपके श्रीचरणारविन्दों में प्रीति नहीं होती है, तब तक भक्तजनों को श्रीराम रूप का दृढ़ ज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है ॥ ४९ ॥

हे देवी । वेद वचनों के अविषय अर्थात् वेद वचन भी जहां नहीं पहुंच सकते ऐसे कृपामृत पूर्ण आपके स्वामी श्रीरामजी के स्वरूप को इस संसार में तप-व्रत-संयम-नियमों द्वारा बलात्कार से प्रत्यक्ष साक्षात्कार करने की जो चेष्टा करता है वह मूर्ख इस लोक के ऐहिक सुखों का व्यर्थ ही त्याग करता है, क्योंकि आप की कृपा विना प्रभु के स्वरूप का साक्षात्कार कैसे हो सकता है । भाव यह है कि आपकी कृपा विना जो संसार का सुख छोड़कर श्रीरामजी के रूप की प्राप्ति के लिये तपस्यादि करता है उसके हाथ से तो लोक-परलोक दोनों चले जाते हैं ॥ ५० ॥

हे कृपा सागरी श्री किशोरी जी ! जो योग में तत्पर मुनिवर्य्य संसार समुद्र से तरने के लिये श्रीराम चरणकमलों में सैकड़ों विघ्नों से भी निवारण नहीं होने वाली दृढ़ा भक्ति को चाहते हैं वे भक्त आपके युगल चरण कमलों को अपने हृदय में ध्यान करते हैं ॥ ५१ ॥

हे वरदान देने वाली शक्तियों में सर्व श्रेष्ठ वर देने वाली ! हे श्रीविदेह तनये । हे सुन्दराङ्गी ! आपके चरणों के परिचारकों के चरणों की वन्दना करने वालों का सङ्ग कृपा करके हमको दीजिये, जिनके सङ्ग से आपके स्वामी श्रीरामजी में हमारे चित्त की रञ्जना (प्रीवि-भक्ति) हो, अर्थात् आप युगल प्रभु के चरणों में हमारा चित्त रमण करे, इसके विना अन्य कोई वरदान मैं नहीं चाहता हूं ॥ ५२ ॥

हे मैया ! मैं आपके साथ विशेषतारहित अर्थात् न्यूनाधिक्य रहित समान भाव से श्री रघुनन्दनजू की मूर्ति का भाव (अत्यन्त प्रेम) अञ्जलिबद्ध होकर (हाथ जोड़कर) माँगता हूँ। हे सर्वज्ञों को भी वरदान देने वाली ! आप हमको यही वरदान दीजिये। क्योंकि मुनिजनों की मण्डली में जो प्रमुख हैं वे आपको अपने पति श्रीरामजी की प्राणवल्लभा मानते हैं ॥ ५३ ॥

उपसंहारः—

एवं स्तुता परं रूपं जानक्या जाड्यनाशनम्। उपरराम शान्तात्मा योगेश्वरः सदाशिवः ॥
निरीक्ष्य त्वन्मुखाम्भोजं भावयन् रूपमद्भुतम्। काँक्षंस्तस्याः परांभक्तिपाद पङ्कजयोर्दृढाम् ॥
उवाच तं वरारोहा जानकी भक्त वत्सला। एवमस्तु महादेव यत्त्वयोक्तं च नान्यथा ॥५६॥
अन्यत्ते कांक्षितं ब्रूहि दास्यामि देवदुर्लभम्। सत्यांमयि कृपोन्मुख्याँ न किञ्चित्तस्य दुर्लभम् ॥
प्रसन्नवदनां दृष्ट्वा सोऽपि देव शिरोमणिः। ययाचे वरमात्मीयं रहस्यं भाव बोधकः ॥५८॥
प्रादात्तस्मै वदान्या सा यद्यन्मनसि कांक्षितम्। वरं—वरेश्वरी साक्षात्पुनरुवाच सा हितम् ॥
अयं पवित्र मौलिर्मे स्तवराजः त्वया शिव। प्रकाशितोति गोप्योऽपिमत् प्रसादात्सुरोत्तम ॥६०॥

इस प्रकार स्तुति करके योगेश्वर शान्तात्मा श्रीसदाशिवजी जड़ता को नाश करनेवाले श्रीजानकीजी के परस्वरूप की प्रार्थना करते हुए उनके मुखकमल को देख कर उस अद्भुत रूप की भावना तथा उनके चरण कमलों में दृढ़ पराभक्ति की आकांक्षा करते हुए उपराम को प्राप्त हुए ॥ ५४–५५ ॥

भक्तवत्सला–परम सुन्दरी–श्रीजानकीजी ने उन श्रीशिवजी से कहा कि–हे श्रीमहादेवजी ! आपने कहा है वैसा ही हो, अन्यथा नहीं हो। आपको और भी जो मांगने की जो आकांक्षा हो यह भी माँग लीजिये, देवों को दुर्लभ पदार्थ भी हम आपको प्रदान करेंगी। हमारे प्रसन्न होने पर किसी को कुछ भी प्राप्त करना दुर्लभ नहीं है ॥ ५६–५७ ॥

देवताओं के शिरोमणि श्रीशिवजी ने भी निश्चयपूर्वक उन श्रीजानकीजी को प्रसन्न वदन देखकर अपने भाव का प्रबोधक रहस्य अर्थात् ऐकान्तिक उपासना का श्रेष्ठ वरदान माँगा। परम–उदार उन श्रीविदेहराजकिशोरीजी ने श्रीशिवजी के लिये उनके मनमें जो–जो अभीष्ट था उनकी इच्छा पूर्ति का वर प्रदान किया, तथा पुनः साक्षात् वरदान देने में सर्वश्रेष्ठ श्रीकिशोरी जी ने निश्चय पूर्वक श्रीशिवजी से कहा ॥ ५८–५९–६० ॥

फलश्रुतिःनिष्काम भावेन—

यः पठेदिममग्रे मे पूजाकाले प्रयत्नतः। तस्येहामुत्र किञ्चिन्न वस्तुस्याद् दृगगोचरम् ॥६१॥

फलश्रुतिः सकामभावेन—

धनं धान्यं यशः पुत्रानैश्वर्यमति मानुषम्। प्राप्येहा। मोदते भूयो मत्पदं तद् व्रजेत्सह ॥

यथल्लोकोत्तरं वस्तु त्रिषु लोकेषु दृश्यते । तत्सर्वमस्य पाठेन प्राप्नुयाद् भुविमानवः ॥६३॥
श्रीजानक्यनुशासनम् (आज्ञा)—
इदं मे परमैकान्तं रहस्यं सुर सत्तम । न प्रकाश्यं त्वया शम्भो शठाय भावद्वेषिणे ॥६४॥
भक्तिर्यस्याति देवेशे सर्वैश्वर्ये तथा मयि । गुरौ सर्वात्म भावेन विद्यते भक्तिरुत्तमा ॥६५॥
तस्मै देयं त्वया शम्भो भावनार्द्र हृदेगुरौ । सर्वभूतहितार्थाय शान्ताय सौम्यमूर्त्तये ॥६६॥
इत्युक्त्वा भावनामूर्त्तिः सीता जनकनन्दिनी । कृपापात्राय तस्मै सा पुनः प्रादाद्वरान्तरम् ॥६७॥
सर्वदुःख प्रशमनं जानक्यास्तु प्रसादतः ॥६८॥

॥ इति श्रीअगस्त्यसंहितान्तर्गत श्रीजानकीस्तवराजः सम्पूर्णः ॥

—:※:—

(फलश्रुति निष्काम भक्तों के लिये)

हे देवों में श्रेष्ठ शिवजी ! पवित्रों में शिरोमणि तथा अत्यन्त गोपनीय यह मेरा स्तवराज मेरी कृपा से ही आपने प्रकाशित किया है । पूजाकाल में जो पुरुष मेरे सम्मुख इस स्तवराज का प्रयत्न पूर्वक पाठ करेगा उस पुरुष को इस लोक में तथा परलोक में कोई भी वस्तु दृष्टिगोचर न होगी । अर्थात् हमारे स्तवराज के पाठ से उसको अपने अलौकिक स्वाभाविक निज स्वरूप की प्राप्ति के सुख के सम्मुख अन्य कोई भी वस्तु सुखदायक नहीं जान पड़ेगी ऐसा आनन्द मग्न रहेगा ॥ ६०–६१ ॥

॥ सकाम भक्तों के लिये फल श्रुति ॥

अब सकाम भक्तों के लिये कहतीं हैं कि–धन, धान्य, यश, पुत्र, अतिमानुष (मनुष्यों को दुर्लभ) ऐश्वर्य इस संसार में प्राप्त कर वह परमानन्द पावेगा । तथा इस स्तोत्र का पाठ कर्ता भक्तजन हर्ष पूर्वक मेरे उस परम पद (धाम) को भी प्राप्त होगा ॥ ६२ ॥ तीनों लोकों में जो–अलौकिक (विलक्षण) वस्तुएं देखने में आती हैं वह सबकी सब इसके पाठ से पृथिवी में मनुष्य को प्राप्त हो सकती है ॥ ६३ ॥

—: विशेष आज्ञा :—

हे देवाधिदेव महादेव ! मेरे इस परम ऐकान्तिक अत्यन्त गोपनीय रहस्य को तुम भावना का द्वेष करनेवाले मूर्ख तथा शठ मनुष्य के प्रति कभी प्रकाशित नहीं करना । जिस पुरुष को सर्वैश्वर्यमान देवों के ईश्वर श्रीरामजी में तथा मुझमें सर्वात्मभाव से परमोत्तमा भक्ति हो तथा जिसकी गुरुदेव में उत्तमा भक्ति हो उस सौम्यमूर्ति–शान्तचित्त वाले–सर्व भूतों के प्राणिमात्र के हित में परायण अपने आचार्य की भक्ति भावना से प्रेमार्द्र हृदय वाले भक्तजन को तुम यह स्तवराज प्रदान करना ॥ ६४–६५ ॥

भावना मूर्ति श्रीजनक नन्दिनी सीताजी ने अपने कृपा पात्र उन श्री शङ्कर जी से इस प्रकार कहकर पुनः अन्य वरदान भी प्रदान किया। तथा श्रीजानकी जी के कृपा प्रसाद से उनका सर्व दुःख शान्त हो गया ॥ ६७-६८ ॥

॥ इति श्री अगस्त्य संहितान्तर्गत श्रीजानकी स्तवराज की "भावदीपिका" हिन्दी भाषा टीका समाप्त हुई ॥

❀ श्रीमन्नृत्यराघवाय नमः ❀

॥ अथ श्रीजानकीस्तवराजः विधिः ॥

श्रीपार्वत्युवाच—

देवदेव ! दयासिन्धो ! भक्तानां क्लेशनाशकः ! श्रीजानकीस्वरूपज्ञ ! सर्ववेदान्तपारग ॥

त्वतः पूर्वं मयासर्वंश्रुतं तन्त्राणि कोटिशः । सर्वाणि क्लेशयुक्तानि स्वल्पैवार्थप्रदानि च ॥

अतो न रोचते स्वामिन्! वदस्वान्यं परात्परम् । येन शीघ्रं जनादेवं प्राप्नुवन्ति कृपानिधिम्॥

पूर्वं श्रीजानकीदेव्याः स्वरूपं यत् परात्परम् । श्रुतं गीतं समासेन महामोद प्रदायकम् ॥

तथैव श्रीरघुवंशप्रियायाः स्तवमुत्तमम् । श्रोतुमिच्छाम्यहं स्वामिन्! इदानीं विस्तराद्विधिम् ॥

त्वत्तोऽन्यः कःप्रवक्ता च त्रिषुलोकेषुविश्रुतः । अतोब्रूहि दयासिंधो! ज्ञात्वा मां किंकरीशुभाम्

श्रीशिव उवाच—

पुरा महर्षयः सर्वे पृष्टवान्न वदंस्तदा । अत्यन्त गोपनीयं च सर्वोपायैर्नगात्मजे ॥७॥

तथापि तत्स्वरूपं च कथयामि विशारदे । श्रीसीतां प्रेष्ठदां नत्वा श्रीमद्रामाङ्क संस्थिताम् ॥

आदौ शुभदिने देवि ! गुरोः पूजां विधाय च । पठनीयं स्तवं दिव्यं ततः श्रीगुरुवक्त्रतः ॥

पश्चात् सुविधिना देवि ! पुरश्चर्यां समाचरेत् । अनन्यमनसासद्यः कार्यसिद्धिः प्रजापते ॥

श्रीजानक्याः परादेव्याः नवम्यां मङ्गलायने । पार्षदान् पूजयित्वा तु सीतायाःपरिचारिका ॥

श्रीसीतां पूजयेद्भक्त्या सर्वशक्ति प्रपूजिताम् । ध्यात्वा मुहूर्तमात्रं च स्व स्वरूपं परं तथा ॥

एकान्ते समुपाविश्य प्राणायामादिकं चरेत् । ततः पाठं प्रकुर्य्याद्वै सावधानेन साधकः ॥१३॥

मधुरस्नेहसम्पन्नं सुस्पष्टं ललितं प्रियम् । सम्यगुच्चारयेद्वर्णामीदृशं कार्यं सिद्धये ॥१४॥

संवत्सरपर्य्यन्तं हि अनुष्ठानमनुत्तमम् । यद्वा षण्मास पर्यन्तं पुरश्चरणमीरितम् ॥१५॥
प्रथमे दिवसे पाठं कुर्य्याद्वै यत्प्रमाणकम् । तथा समाप्ति पर्यन्तं कर्तव्यः साधकोत्तमैः ॥
षष्टिवारं प्रयत्नेन सावधानेन चेतसा । प्रत्यहं वर्षमात्रं यः कुर्य्याद्वै साधकोत्तमः ॥१७॥
साक्षाच्छ्रीजानकीं पश्येत् सत्यं नैवानृतं वचः । षण्मासात्तु परां देवि! भावनां लभते नरः ॥
पञ्चाशत्संख्यया पाठं कुर्याद्वै मानवो यदि । विद्यां संदीपनी तस्य नित्यं करतले स्थिता ॥
षण्मासं पठनेवास्य धन धान्यादिकं लभेत् । संवत्सर प्रमाणं तु चत्वारिंशद्धि संख्यया ॥
पठेत्तदा भवेद्विद्वान् मतिमान् कीर्तिमान्नरः । त्रिंशद्वारं सुपाठेन संवत्सरमितं प्रिये ! ॥
पुत्रं यशस्करं दिव्यं सुखदं मोक्षमालभेत् । अनेन विधिना सर्वं साधयेत्साधकोत्तमः ॥२२॥
परन्तु पुरुषार्थः स्याद् दृढ़ं सिद्धयति नान्यथा । मिथिलायाः महाक्षेत्रे कमलायास्तटे शुभे ॥
साकेते चित्रकूटे च पुरश्चरणमारभेत् । अथवा चोत्तमे देशे तथा पुण्य सरित्तटे ॥२४॥
पठेल्लभेत्परां कीर्तिं स्वाभीष्टां नात्रसंशयः । पाठं समाप्य विधिवत् हवनादि क्रमेण च ॥
श्रीसीतामन्त्रराजेन राममन्त्रवरेण वा । पुनः कन्या सुविप्रस्य क्षत्रियस्यापि पार्वति ॥२६॥
भोजयेत्परया भक्त्या सावधानेन साधकः । भूषणाम्बर रत्नैश्च पूजयेद्धृष्टमानसा ॥२७॥
धनिनां च प्रिये! प्रोक्तं विरक्तानां सुमानसैः । तथा स्त्रीजातिमात्रस्य निन्दां वैदूरतस्त्यजेत्॥
यदीच्छेदात्मनः श्रेयं जानक्याश्च प्रसन्नताम् । नारीणां निन्दका ये च तथा दुःखप्रदायकाः ॥
वैदेहीविमुखास्ते वै महादुःखौघ भागिनः । असूया सर्वथा त्याज्या मिथ्यासंभाषणं तथा ॥
एतयोर्योगतो देवि! कार्यसिद्धिर्न जायते । शीघ्रं स्व वाञ्छितार्थी च सर्वमेतत्परित्यजेत् ॥
ब्रह्मचर्य्यव्रते स्थित्वा चापल्यादि विवर्जितः । मौनव्रतं समास्थाय दुराचारं परित्यजेत् ॥
सर्वपाप समाक्रान्तमनृतं वेदगर्हितम् । अवश्यं वजयेद्धीमान् सर्वयत्नेन भूरिशः ॥३३॥
पाठान्ते च महेशानि नाममन्त्रादिकं जपेत् । अन्यथानैव वक्तव्यं वचसा शास्त्रवर्जितम् ।
हविष्यं चैव शुद्धान्नं भोजनं मोददायकम् । घटिकाशेषदिवसे न कुर्यात्सावधानतः ॥३५॥
अनुक्षणं स्वरूपस्य चिन्तनं साधकोत्तमैः । पाठैस्सह विधातव्यं प्रीतिश्रेष्ठा विशेषतः ॥
मोहनोच्चाटनादीनि सिद्धयन्ति सत्वरंध्रुवम् । परन्तु प्रीतषिद्धं तन्नग्राह्यं रामतत्परैः ॥
सर्वाभिलषितंवस्तुमनायासेन वै लभेत् । सिद्धयो जानकीरामपादोपासनतत्पराः ॥३८॥
अतो हि सिद्धयः सर्वा साधकेच्छानुवर्तिकाः । अनुष्ठानमवश्यं हि कर्तव्यं सुखमिच्छता ॥
श्रीजानकी परादेव्याः प्राणात्प्रियतरं महत् । स्तवराजमिदं दिव्यं पठनीयं सुभक्तितः ॥४०॥

इति श्रीजानकीदेव्यास्तवराज विधिर्मया । तव भवत्या प्रकथिता न देया यस्यकस्यचित् ॥
श्रीरामानन्यभक्ता य गुरुनिष्ठाय पार्वति! स्वप्रियाय प्रदातव्यं सत्यं सत्यं वचो मम ॥४२॥
त्रिषुलोकेषु भो देवि! नैवास्त्येतादृशं स्तवम् । माहात्म्यसर्वमुत्कृष्टं पुण्यं पापौघनाशनम् ॥
श्रुत्वा संधारयित्वा च परमां भक्तिमालभेत् । सर्वदा मोदतेभक्तः श्रीसीताराम सन्निधौ ॥

इति श्रीब्रह्मयामले हर गौरी संवादे श्रीजानकीस्तवराज विधिः सम्पूर्णा ।

॥ श्रीसीताराम | श्रीसीताराम ॥

—❀—

॥ श्रीजानकी स्तवराज की संक्षिप्त विधि ॥

श्री पार्वती जी ने कहा:—हे देवदेव ! दयासिन्धो ! भक्तों के क्लेश हरने वाले, श्रीजानकी जी के यथार्थ स्वरूप को जानने वाले सर्व वेदान्त पारंगत आपसे मैंने सब कुछ सुना, करोड़ों यन्त्र-मन्त्र-तन्त्र जिनके करनेमें कष्ट बहुत है तथा फल स्वल्प है ऐसे ही सब हमको प्रिय नहींहैं, इसलिये आज तो हे स्वामिम् ! कोई ऐसा सर्व श्रेष्ठ साधन बताइये, जिससे लोग सहज ही कृपा निधि प्रभु को प्राप्त कर सकें । आपने पहले एकवार श्रीरामवल्लभा श्रीजानकी देवी के परात्पर स्वरूप का तथा उनकी स्तुति का संक्षेप में वर्णन किया था, उसी को विस्तार से आपके श्रीमुख से श्रवण करना चाहती हूँ, त्रिभुवन में उस रहस्य का वक्ता आपके विना दूसरा है ही कौन ! अतएव हे दयासिंधो ! अपनी किंकरी जानकर उसका आज वर्णन करिये । (१ श्लोक से ६ तक)

श्री शङ्कर जी ने कहा:—प्रथम एक वार महर्षियों ने यही प्रश्न किया था परन्तु अत्यन्त गोपनीय होने से मैंने नहीं कहा था । परन्तु तुम्हारी भक्ति से प्रसन्न होकर श्रीसीताजी जो सभी दुर्लभ वस्तु प्रदान करने वाली हैं श्रीरामजी के वामाङ्क है विराजमान है उनको प्रणाम करके आज तुमसे कहता हूँ । पहले किसी शुभ दिन के शुभ मुहूर्त में श्री सद्गुरु की पूजा करके श्री गुरुमुख से इस "श्रीजानकी स्तवराज" को पढ़ना चाहिये, पश्चात् विधि पूर्वक इसका श्रवण करना चाहिये । अनन्य मन से कार्य करने वाला शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है । श्रीजानकी नवमी (वैशाख शुक्लानवमी) के मङ्गलमय समय में परात्परा देवी श्री जानकी जी के पार्षदों का तथा उनकी परिचारिकाओं का पूजन करके सर्व शक्तियों के द्वारा सुपूजित श्री जानकी जी का भक्ति पूर्वक पूजन करना चाहिये । एक मुहूर्त मात्र अपने दिव्य सम्बन्ध भावनात्मक पर स्वरूप का ध्यान कर एकान्त में बैठकर आचमन-प्राणायामादिक करके तब पाठ करना चाहिये । (७ श्लोक से ११ श्लोक तक)

साधक अत्यन्त सावधान होकर मधुर स्नेह से सुन्दर स्पष्ट ललित प्रिय स्वर में एक-एक अक्षर शुद्ध शान्ति से उच्चारण करते हुए कार्य सिद्धि के लिये पाठ करे । एक वर्ष अथवा

छ महीने पाठ करे । प्रथम दिन जितने पाठ कर सके उतने ही पाठ समाप्ति पर्यन्त प्रति दिन पाठ करे । साठ-साठ पाठ प्रति दिन सावधानी से करता रहे तो एक वर्ष में श्रीजानकीजी का साक्षात् दर्शन हो जाता है । यह मेरा सत्य वचन है, कभी असत्य नहीं हो सकता । यदि छः मास ही ६० पाठ प्रति दिन करे तो दिव्य भावना प्राप्त हो जाती है । यदि ५० पाठ प्रति दिन करे तो संदोपनी विद्या उसको हस्तगत हो जाती है । ५० पाठ छः मास करे तो धन धान्य सम्पन्न हो जाता है । ४० पाठ प्रति दिन एक वर्ष करे तो मनुष्य विद्वान् बुद्धिमान् तथा कीर्तिमान हो जाता है । ३० पाठ प्रति दिन एक वर्ष करे तो यशस्वी पुत्र प्राप्त होता है, सुख से जीवन विताता है तथा अन्त में मोक्ष प्राप्त करता है । इस प्रकार विधि पूर्वक दृढ़ पुरुषार्थ करने से ही सिद्धि मिलती है, अन्यथा नहीं मिलती (१४ श्लोक से २२ तक)

महान् महिमा वाले श्री मिथिला क्षेत्र में परम शुभ श्रीकमला तट पर अथवा श्रीअयोध्या जी में श्री जानकीघाट पर तथा श्री चित्रकूट में श्रीजानकी कुण्ड पर यह पुरश्चरण प्रारम्भ करे, अथवा किसी पुण्य प्रदेश में पवित्र नदी के किनारे इसका पुरश्चरण करने से शीघ्र ही अभीष्ट सिद्धि तथा परम कीर्ति प्राप्त होती है । इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । पाठ समाप्त होने पर दशांश श्री सीताराम युगल मन्त्र से हवन-तर्पण- ब्राह्मण भोजनादि जो विधि है क्रमशः करे । पश्चात् हे पार्वति ! ब्राह्मण की कुमारी कन्या को यदि ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय की कन्या को भक्तिपूर्वक भोजन कराके पूजन करके प्रसन्नतापूर्वक वस्त्र-भूषण दक्षिणा प्रदानकरे । यह विधि धनियोंके वास्ते है, विरक्तों को मानसिक पूजन ही प्रशस्त है । स्त्री जातिमात्र की किसीकी निन्दा न करे। जो नारी निन्दक है तथा जो स्त्रियों को दुःख देते हैं वे श्री किशोरी जू के कभी प्रिय नहीं हो सकते हैं, अतः आत्मा का कल्याण चाहने वालों को श्री जानकी की प्रसन्नता के लिये यह घृणित काम दूर से ही त्याग देना चाहिये । ईर्षा-द्वेष-मिथ्या भाषण-निन्दा ये तो सर्वथा त्याग ही देना चाहिये (२३ श्लोक से ३० तक)

पूर्वोक्त कार्य के योग से हे देवि ! कार्य सिद्धि कभी नहीं होती है, अतः शीघ्र मनोरथ पूर्ति के लिये इन सबका त्याग कर दे । ब्रह्मचर्य पालन करे, चञ्चलता चित्त की त्याग दे । मौन रहे । दुराचार से दूर रहे । सभी पापों की खान झूठ (असत्य) छोड़ दे । वेद शास्त्र निन्दित असत्य व्यवहार त्यागकर पाठ करने के पश्चात् बचे हुए समयमें श्रीसीतारामनाम तथा मन्त्रराज का जप किया करे । शुद्ध हविष्यान्न प्रभु को निवेदन कर सात्विक स्वल्प आहार घड़ी दो घड़ी दिन शेष रहे उससमय करे । रात दिन अपने तथा श्रीसीतारामजी के दिव्यस्वरूप का चिन्तवन किया करे, भजन में तथा पाठ पूजा में ही अधिक प्रीति रखे । मारण-मोहन-उच्चाटन-वशीकरण प्रयोगों के चक्कर में न फँसे ये सब भजन की दिव्य सम्पत्ति का नाशकर संसार की माया जाल में फँसाने वाले हैं । श्रीराम भक्त को अनायास ही जो चाहे प्रभु कृपा कर प्रदान करते ही हैं तब वासना में, सिद्धियों के प्रदर्शन में, लोक रञ्जन में, नहीं फंसना चाहिये । सर्व सिद्धियां श्री सीताराम जी की चेरी हैं । अतएव सभी श्रीरामचरणारविन्द की उपासना करने वाले के आधीन रहती है ।

सुख चाहने वाले को यह अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। श्री जानकी जी परात्परा महादेवी का यह स्तवराज परम दिव्य है, प्राणों से भी प्यारा है, महा दिव्य है, भक्ति पूर्वक नित्य पठनीय है, हे देवि ! इस लिये इसकी विधि तुमको बतलायी हैं, यह सबको नहीं देना चाहिये। हे पार्वति ! जो श्रीराम का अनन्य भक्त हो, श्रीगुरुनिष्ठ हो, अपना अत्यन्त प्रिय हो, अधिकारी हो, उसको देना चाहिये, इस स्तवराज के विषयमें हमने जो कुछ कहा है वह सत्य ही है, तीनों लोक में इसके समान कृपा पूर्ण कोई स्तोत्र नहीं है। इसका महात्म्य सर्वोत्कृष्ट है, पवित्र तथा पाप समूह नाशक है, इसको सुनकर धारण करने वाला पराभक्ति प्राप्त करता है तथा सदैव श्री सीताराम जी के सानिध्य में श्री साकेत धाम में आनन्द करता है। (श्लोक ३१ से ४४ पर्यन्त)

श्री हरगौरी संवादात्मक श्री ब्रह्मयामल तन्त्रोक्त यह श्रीजानकी स्तवराज की विधि सम्पूर्ण हुई ॥ श्रीसीताराम ॥

॥ श्रीमैथिली प्रपत्ति पंचकम् ॥

वन्देऽम्बिके ! भूमिसुतेऽतिदिव्ये ! वात्सल्य कारुण्य कृपा स्वरूपे ।
सुकोमले ! कोमल भाव पूर्णे ! श्रीमैथिलि ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

विदेह कन्ये ! मृदुल स्वभावे ! जनकात्मजे ! दिव्य कृपा गुणाढ्ये ।
वन्दे सदाऽभीष्ट फल प्रदायिके ! श्रीमैथिलि ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ २ ॥

ऐश्वर्य दिव्याद्भुत वैभवाढये ! माधुर्य्य पूर्णे ! सुकुमार गात्रे ।
रामप्रिये ! श्रीरघुवीर वल्लभे ! श्रीमैथिलि ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ३ ॥

जय भूमिजे ! श्रीमिथिलेश कन्ये ! श्रीरामकान्ते ! मुनिसिद्ध सेव्ये ।
वाणी रमोमादिक शक्ति पूजिते ! श्रीमैथिलि ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४ ॥

वदामि श्रीमैथिलि नाम निर्मलम् स्मरामि श्रीमैथिलि रूपमुज्ज्वलम् ।
नमामि श्रीमैथिलि पाद पङ्कजम् श्रीमैथिलि ! त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ५ ॥

रचितं मैथिलीदासेन काष्ट कौपीन धारिणा ।
पञ्चकं पठनाद्भूयात् सीता भक्ति प्रदायकम् ॥ ६ ॥
पञ्च श्लोकं पठेद्यस्तु प्रातः कालेप्रबोधितः ।
सीताराम प्रियो भूत्वा श्रीसाकेते महीयते ॥ ७ ॥

श्रीसीतास्तवः

श्रीशिव उवाच—

शृणु देवि प्रवक्ष्यामि परावेण्याः परां स्तुतिम् ।
यस्याः स्मरणमात्रेण साक्षात् सीता प्रसीदति ॥१॥

विद्यारामनिधानि कीर्तिलतिका श्रीरामदेवद्रुमं,
प्राप्ता मैथिलराजराजमहिला प्रेमाम्बुसंवर्द्धिता ।
मिथ्यैषावनिमुत्थिता निमिकुल प्रख्यातख्यातिप्रदा,
सीतास्यैव चरित्रपावनजगद्विद्याधिका राजते ॥२॥

स्वर्णाभाविहिताञ्जलि प्रणिहितैर्मुक्तैः सुमुक्ताफलैः,
या विद्योतिसुकर्णभूषणमहैः जातालवालं मुदा ।
पीयूषाम्बु निषिक्तदैवतटिनी स्वच्छाम्बुसिक्ताङ्घ्रियुक्,
काचित् काञ्चनकल्पवल्लिरुचिता भूमेःश्रियाऽन्यूनभा ॥३॥

रामेन्दीवरसुन्दरेक्षणमिलत् भ्रामालिझंकारकैः,
प्रश्यन्तीव कराञ्जलिं विदधतीं संच्छादन्तीं मुहुः ।
रामेणाञ्चितमालिकां स्वभवने चक्रेऽथ सर्वप्रिया,
श्रीमत्कोशलराजराघवपुरो विज्ञापिताः केलयः ॥४॥

हस्ताब्जग्रुथसुवर्णभूषणालसन्माणिक्य शुभ्रांशुभा,
श्रीरामाननबिम्ब नीलकमलज्योत्स्ना समुद्योतिता ।
चन्द्रस्यैव मृगाङ्कतां कलयितुं लोके यदीया बभौ,
श्रीमद्राघववर्यं रामललना भक्तानुकम्पा प्रदा ॥५॥

देवेन्द्रप्रमुखाश्रयोत्तम गुणालंकार वामाजनैः,
सन्माणिक्य सुजुष्ट झंझणझणत्कारोल्लसच्चामरैः ।
वातोत्थित्त तरंगवत्प्रचलितैः संजीवनात्संततं,
मैथिल्याः कृतकृत्यतामुपगतैः चेतस्तु संतुष्यते ॥६॥

ऐश्वर्यं परमं निरन्तरमतो ब्रह्मादि देवा अपि–
स्वच्छन्दं जगदुद्भवस्थितिलयानुष्ठान शक्तिश्रिता ।
तामाद्यां महनीयकीर्तिकलितां श्रीरामदेवद्रुमे–
संलग्नामनुचिन्तयेऽवनिसुतां भक्तेप्सितार्थप्रदाम् ॥७॥

नम्राणां शिरसिस्थितं चरणयोर्भास्वत्परागं मुदा–
मैथिल्याः कतिचिद्विदुः सुरगणाः सिन्दूरपूरं परम् ।
यं रागोदयजातमद्य स परागो मे निहन्यादथ–
क्षिप्रं स्ववनिता समर्चित पदाब्जानां सुधांधोनुमाम् ॥८॥

मन्दाकिन्यवगाहनेनतितरां पूताङ्गदेवाङ्गना–
मौलिभ्रश्यदमन्दगन्धनिवहां मन्दारपुष्पस्रजाम् ।
क्षिप्त्वा तत्र जले निमज्य सुचिरं यत्पादकञ्जांशवः–
प्राप्त्यै यत्न परास्सदावनिसुतां तां भावये स्वेहृदे ॥९॥

श्रीमन्मैथिलनन्दिनी चरणयोस्सेवा विधानेच्छया–
चन्द्रोऽसौ दशधावभूव नख रम्याजेन रागेण तु ।
आरुण्यं विनिधाय कुन्तलतया वासे दधौ लाञ्छनं–
तत्पादांगुलि संततं श्रमजलस्रावाः सुधाविन्दवः ॥१०॥

भक्तार्ति विनिहन्ति या स्वदयया पीयूषसिन्धूर्मिवत्–
दृक्पातैः स्वकटाक्षचारुविलसद् भ्रूबाणजालैर्भृशम् ।
विघ्नौघायित दुश्चरित्रकुटिल प्रत्यूह-नाशोद्यता–
श्रीरामेण सुपूजिता विजयते सीता जयाप्त्यै सदा ॥११॥

[– मन्दस्मेरमुखाब्जसौरभ कुलामोदाभिरामं श्रिता–
रामं मैथिलनन्दिनी विधिनुता मां पातु सर्वेश्वरी ।
प्रत्येकस्य तनूरुहार्पित परब्रह्माण्डकोटिर्मुदा–
वेदाः श्वासभिदा गुणत्रयकृता देवत्रयी यद्भृता ॥१२॥

बाल्ये शम्भुधनुर्ध्यनामि कुतुकात् पित्रोर्ददेसुद्यया–
दिव्यं वीक्ष्य पराक्रमं स्वदुहितुः क्षिप्रं पणं तेनतुः ।

श्रुत्वा तत्पणमासमुद्रमवनीपालादि गन्तादथो–
मन्त्राहूत सुरा इवाध्वरमहीं हव्याय स्वर्गाद्ययुः ॥१३॥
विश्वामित्रनिदेशतो रघुकुलप्रख्यातकेतुस्स्वयं–
रामस्तद्धनुरावभंज सदसि प्रीता तदालोक्य या ।
कंठे हारमदादुदारचरित श्रीरामचेतो गता–
पायात्कोशलराज रामललना संसार दावानलात् ॥१४॥
मग्नं वीक्ष्य भवार्णवे करुणया त्रायस्व मां मैथिली–
क्रन्दन्तं कपटं विहाय धरणीं जाते शरण्ये रमे ।
को वा त्रातुमलं चरित्रमखिलं ब्रह्मादिदेवेष्वपि–
श्रीमत्पादरजःकणा भुवनतां प्राप्ताः किमेतैः कृतम् ॥१५॥
॥ नित्यं संविदधासि पूर्णकरुणामानन्द ॥

यह ग्रन्थ अपूर्ण है लेखक अज्ञात है परन्तु श्री लक्ष्मणकिला अयोध्या जी से प्राप्त "श्रीसीता स्तवः" तथा श्री जानकीघाट श्रीरामवल्लभाकुञ्ज से प्राप्त "श्रीजानकी परत्व प्रकाश" दोनों ग्रन्थ अक्षरशः एक हैं, केवल नाम भेद है, तथा श्री जानकीघाट श्रीरामवल्लभाकुञ्ज से प्राप्त इस "श्रीसीता स्तवः" के श्लोक ७ से २२ पर्यन्त वहीं से प्राप्त "श्रीजानकी परत्व प्रकाश" के श्लोक ६ से २ पर्यन्त अक्षरशः एक ही हैं इसलिये हमने उन श्लोकों को यहां नहीं दिये हैं। कृपालु पाठक उन श्लोको को इसके आगे प्रकाशित "श्रीजानकी परत्वप्रकाश स्तोत्र" में ही पढ़ने की कृपा करें। तथा यह "श्रीसीता स्तवः" किसी के पास सम्पूर्ण हो तो कृपा कर अवश्य सूचित करें उसको प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जायगा।

—ः श्रीसीता--स्तवः ः—

श्रीशेष- उवाचः—

श्रीशेष भगवान् धरणी देवी से कहते हैं कि हे देवि ! जिसके स्मरण मात्रसे साक्षात् भगवती श्रीसीता प्रसन्न हो जाती हैं ऐसी परात्परा देवी की परम श्रेष्ठ स्तुति का मैं अब वर्णन करता हूं उसको प्रेम से श्रवण कीजिये ॥ १ ॥

श्रीराम रूपी कल्पद्रुम को सुशोभित करने वाली श्रीसीताजी कीर्तिलतिका के समान हैं, जो धरातल का भेदन कर निमिकुल को प्रख्यात् करने के लिये श्रीविदेह महाराज के घर उत्पन्न हुई, जिसको उन्होंने प्रेमजल से सींच कर पाला पोसा, जो विश्व रूपी बगीचे की शोभा सुन्दरता बढ़ाने वाली हुई, तथा जो स्मरण मात्र से ही सबको शुद्धि प्रदान करती हैं, ऐसी श्री सीता जी

अपने ही पुनीत चरित्र से जगत् को पावन करती हुई, ब्रह्म विद्या से भी अधिक विराजमान हो रही हैं ॥ २ ॥

स्वर्गकी देवाङ्गनायें हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर मुक्ता मोती से भरी जो अञ्जलियाँ अर्पण करती हैं वही कीर्तिलता रूपिणी श्री जानकी जी के चारों ओर आल वाल (घेरा) बन गया है, जिसमें देवगङ्गा दिव्य अमृत से उनके श्रीचरण धोती हैं वही उसमें जल सींचा गया है, स्वच्छ जल से चरण प्रक्षालन कर उसको दिव्य वस्त्रों से पोंछती हैं, वही रजकण सिक्ता (बालू) है, ऐसी कोई विचित्र अलौकिक काञ्चन की कल्पलता आज भूमि की श्री महालक्ष्मी बनकर श्रीसीताजी महान् सुन्दर प्रकाशित हो रही हैं ॥ ३ ॥

कामदेव को भी लज्जित करने वाले सुन्दर कमल पत्र के समान विशाल नयनों पर सखियों के नेत्र रूपी श्याम भ्रमर झन्कार कर रहे हैं, उससे डरती हुई कभी-कभी अपने हाथों से पीछे की ओर से कोई सखी कौतुक (खेल) करती हुई श्री जू के नयनों को मूंद लेती हैं, तथा श्री राम जी की आँखों की ओर सब सखियाँ हँसती हुई देखती हैं तो प्रतीत होता है कि मनोज्ञ हरिणाक्षियों की मालायें श्रीराम के चारों ओर शोभा दे रही हैं, ऐसी श्री कोशलराज राघवेन्द्र प्रभु के सामने की जाने वाली लीलायें सदैव आनन्द प्रद बनी रहें ॥ ४ ॥

हाथ के अंगूठे में रत्नजटित स्वर्ण की अंगूठी पहने हुई हैं उसकी माणिक्य नीलिमा तथा नीलाम्बुज श्याम श्रीराम के अङ्ग की नीलिमा जिनके मुखचन्द्र पर पड़ने से चन्द्रमा में मृगाङ्क की भांति जो अलौकिक शोभा लोक में सुशोभित होकर दिखा रही हैं, वे श्रीमान् राघवेन्द्रवर्य्य श्रीराम की ललना सदैव भक्तों को अनुकम्पा प्रदान करती रहें ॥ ५ ॥

देवेन्द्र आदि लोकपालो की प्रमुख-प्रमुख ललनायें जो उत्तम गुण तथा अलङ्कारों से अलंकृत हैं, जिनके हाथों में पहने हुए कङ्कण का झनकार श्री किशोरी जू के चमर करते समय झंकृत हो रहा हैं। तथा उनमें जड़े हुए मुक्तामणि माणिक्य की प्रभा चमक रही है, वह ऐसी प्रतीत हो रही है कि जैसे आनन्द के समुद्र की तरल तरङ्गे लहरा रही हों, श्रीमैथिलीजू उनकी इस चंवर डुलाने मात्र की सेवा से प्रसन्न होकर उनकी ओर कृपा कर देख लेती हैं तो वे परम प्रसन्न होकर अपने को कृत कृत्य धन्य-धन्य मानकर परमानन्द पाती हैं ॥ ६ ॥

आपके स्वच्छन्द परमैश्वर्य का अवलोकन करके ही ब्रह्मादि देवगण भी जगत् की उत्पत्ति-पालन-प्रलयादि आपकी दिव्य शक्तियों के अनुष्ठान में निरन्तर परायण रहते हैं, उसी आद्या महान् कलित कीर्ति वाली श्रीराम कल्पद्रुम में संलग्ना भक्तों के अभीष्ट मनोरथों को पूर्ण करने वाली पृथिवी कुमारी श्रीसीता का प्रतिक्षण हम चिन्तवन करते हैं ॥ ७ ॥

श्री मैथिली जू के चरण कमलों में नमस्कार करने वालों के शिर पर चमकता हुआ चरण रज पराग लगने से परम प्रसन्न हुए कितने देवगण सिन्दूर रेखा मानकर मुदित होते हैं,

तो कितनें आज हीं हमको श्री जू के चरणों में अनुराग उदय हुआ है वही पराग बनकर हमारे शिर में लगा है जो हमारे दुर्भाग्य का हनन करेगा यह मानकर प्रसन्न होते हैं स्वर्ग की देवाङ्गनाओं द्वारा समर्चित चरण कमल की सुधा से परिपूर्ण वह पराग हमारे भी दुर्भाग्य का शीघ्र हीं विनाश कर दे ॥ ८ ॥

मन्दाकिनी में नित्य स्नान करने से सर्वथा पवित्र शरीर वाली देवाङ्गनायें श्री जू के शिर पर से परम सुगन्ध से भरपूर मन्दार पुष्पों की मलायें जो गिर जाती है उसको मन्दाकिनी के जल में डालकर खूब प्रेम से पुनः पुनः स्नान करती हैं। तथा अत्यन्त प्रसन्न होती हैं तथा श्री धरणी तनया किशोरी के चरण कमल की रज प्राप्त करने के लिये सदैव प्रयत्न करती रहतीं हैं उन श्रीजानकीजी की मैं अपने हृदय में सदैव भावना करता हूँ ॥ ९ ॥

श्री मिथिलेश नन्दिनी जू के चरणों की सेवा प्राप्त करने की इच्छा से चन्द्रमा चरण की दशों अंगुलियों के दश नखों का रूप धारण कर चरणों की सुन्दरता बढ़ाने की सेवा में लग गया, उसी समय सखियों ने चरणों में महावर लगाया उसकी लाली नखों में भी आ गई, इससे चन्द्रमा में नवीन राग का उदय हुआ हो ऐसी अरुणाई दीखने लगी, तब चरणों में प्रणाम करते समय देवाङ्गनाओं के केश कलाप रूपी छाया नखोंमें पड़ी जो चन्द्रमा के श्याम लाञ्छन सी दीखने लगी। तथा अत्यन्त सुकुमार श्रीकिशोरी जी के चरणों की बहु विधि सेवा पूजा होने से जो परिश्रम हुआ उससे पसीना के बूंद ऐसे लगने लगे मानों चन्द्रमा चरणों पर अमृत बिन्दुओं की वर्षा कर रहा हो ॥ १० ॥

जो अपनी दया रूपी अमृत सागर की उत्ताल तरङ्गों से भक्तों की आर्ति (पीड़ा) सदैव हरण करती रहती है। जो अपने कृपा कटाक्ष के बाणों की जाल समूह से दुःखों का निवारण कर देती है, जो विघ्नों के बवंडर-दुश्चरित्र-कुटिलता आदि आपत्तियों को नाश करने में सदा तत्पर रहती है, तथा जो श्रीराम के प्रेम द्वारा सदैव सुपूजित होती रहती है, वह श्री सीता जी हमको विजय प्रदान करने के लिये सदैव विजयी बनी रहें ॥ ११ ॥

जिसके प्रत्येक रोम-रोम से अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना होती है, जिसके प्रमुदित होकर श्वास-प्रश्वास लेने पर चारों वेदों की ऋचाये उत्पन्न होती हैं, जिसकी कृपा से देवत्रयी (ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर) तथा गुणत्रयी (सत्व-रज-तम) कर्तव्य परायण बनते हैं जो अपनी मन्द भरी मुसुकान भरी मुखारविन्द की सौरभ पूर्ण हास्य माधुरी से श्रीराम को भी अभिराम प्रदान करती हैं वह विधि वन्दिता सर्वेश्वर श्री मिथिलेश नन्दिनी मेरी सदैव रक्षा करें ॥ १२ ॥

बाल्य काल में क्रीड़ा कौतुक करते हुए जिन्होंने शङ्कर के कठोर धनुष को झुका कर पिता श्री जनक जी को दिखलाया, अपनी पुत्री का ऐसा दिव्य पराक्रम देखकर उन्होंने तुरन्त ही प्रण ठान लिया, उस प्रण को सुनकर समुद्र पर्यन्त पृथिवी के भूपाल मन्त्रों के द्वारा आहूत देवताओं की भाँति सब जनकपुर आये, इस प्रकार "धनुषयज्ञ" का प्रारम्भ हुआ ॥ १३ ॥

विश्वामित्र महर्षि के निर्देश से प्रख्यात रघुकुल केतु भगवान श्रीराम भी स्वयं वहां पधारे

तथा उस स्वयम्वर की सभा में उन्होंने धनुष को तोड़ डाला। तब अत्यन्त प्रसन्न हुई श्रीजानकी जी ने उदार चरित श्रीराम के कण्ठ में जयमाला पहराई, वह श्रीराम के चित्त में निवास करने वाली श्री कोशलराज राम की ललना संसार के दावानल से हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥

हे मैथिली जू ! भवसागर में डुबते हुए देखकर आप करुणा कर मेरी रक्षा करें। कपट त्याग पर आपके सन्मुख धरणीतल पर रो-रोकर लोटते हुए मुझ पर हे रमे ! हे शरण्ये ! आप दया करें। आपके विना अन्य कौन मेरी रक्षाकर सकताहै ? दूसरे तो आपके ही श्रीमान् चरण रज के कणों का आश्रय लेकर भुवन पति ब्रह्मादिक बने हुए हैं, यह तो आपका ही दिव्य चरित्र है, तब इन सबसे क्या होने वाला है ? हमकों तो आप ही तार सकती हैं ॥ १५ ॥

॥ श्रीजानक्यै नमः ॥

। अथ श्रीजानकी परत्वप्रकाश ।

(श्रीसीता स्तवः)

भूजाचरण विन्यास लाक्षारञ्जित हृत्तटे । रामागणेश्वरं रामं प्रेम भाजोऽहमाश्रये ॥
सीताकल्पलतोत्तुङ्ग कुञ्ज गुच्छ विहारिणी । षट्पदे मधुराचार्य्यान् माधुर्य्यैश्वर्य्यं मन्दिरे ॥

श्री वन्द्ये शरदिन्दु सुन्दरमुखि स्निग्धातिबिम्बाधरे-
विद्युद्रुक्फलधौतकोमलरुचिश्यामे शुभे शोभने ।
नीलेन्दीवर लोचने सुललिते लावण्यलक्ष्मीलते-
सद्गीते विशदे प्रसीद विदिते सीते मया संश्रिते ॥३॥

अन्यूनाधिक श्रीस्तनद्वयफले दिव्याङ्गरागाञ्चिते-
रत्नालङ्कृतिकान्तिकान्ततनुके सीमन्त शोभाधिके ।
सुभ्रूरायतचारुनेत्रनिटिले वक्राग्रनीलालके-
नाशामौक्तिकमण्डिताधरपुटे सीते तवैवास्म्यहम् ॥४॥

सर्वस्मिन् मधुराभिभाषिणि दृढं निर्बाधमाधुर्य्य भू-
भव्ये भर्त्र्यनुरूपरूपभरिते निस्सीमसौन्दर्यभाक् ।
स्वेच्छायाङ्ग दिशाचले चुलुकितंब्रह्मानुभावेऽमले-
पद्माक्षि प्रतिपद्मरागदशने वैदेहि सन्तुष्य मे ॥५॥

भगवती भूमिजा के लाक्षा रञ्जित चरणों के विन्यास से अनुरञ्जित हृदय तट में, रामा-गणों के ईश्वर श्रीराम में, माधुर्य तथा ऐश्वर्य के परिपूर्ण मन्दिर में, श्रीसीता कल्पलता के उत्तुङ्ग कमल गुच्छों में विहार करनेवाले भ्रमर मधुकर में मधुर भावना रखने वाले प्रेम भाजन आचार्यों का मैं आश्रय ग्रहण करता हूं ॥ १-२ ॥

श्री जी के द्वारा वन्दनीय-शरच्चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख वाली, अति स्निग्ध कोमल अरुण ओठ वाली, नील कमल के समान सुन्दर नयन वाली, लावण्य की लक्ष्मी स्वरूप परम ललित लता के समान सज्जनों द्वारा जिनकी विशद कीर्ति का गान होता है ऐसी हे श्रीसीते ! मैं आपका आश्रय ग्रहण करता हूँ आप मुझपर प्रसन्न हों ॥ ३ ॥

परस्पर समान सुन्दर दो फलों के समान उरोज से सुशोभित-दिव्य अङ्गराग (उपटन) को सुगन्ध से भरपूर सुन्दर भौंहों से अलंकृत मनोहर नेत्र वाली-मुख पर घूमकर आये हुए श्याम घुंघराले केशोंसे रमणीय रूपवाली-रत्नोंसे अलंकृत आभूषणोंसे विभूषित कान्तिपूर्ण कमनीय शरीर सौन्दर्य सम्पन्ना-सीमन्त की अधिक शोभा से सुशोभित-नाशामणि की चमक से चमकते हुए अधर पुटों वाली हे सीते ! मैं तो तुम्हारा ही हूं ॥ ५ ॥

सभी के साथ मधुरातिमधुर बोली बोलने वाली, बाधा रहित माधुर्यता की सुदृढ़ भूमि, भर्ता के अनुरूप भव्यस्वरूप से भरपूर-निस्सीम सौन्दर्य की एकमात्र भाजन-निर्मल ब्रह्मानन्द को जिन्होंने अपने परमानन्द के सामने चुल्लू भर बना दिया है, ऐसी अपनी स्वेच्छा से सभी दिशा-चलों को आनन्दिन करने वाली हे कमल नयने ! हे कमल के रङ्ग के समान दाँतों वाली श्री वैदेही जू आप मुझ पर सन्तुष्ट हों ॥ ५ ॥

सौगन्ध्यौज्वल सौकुमार्य कलिता कौमल्यदा केलिदा-
सङ्गीतामृत वर्षिणी प्रतिपदं प्रेयः प्रयासापहा ।
एणाक्षीस्वकटाक्ष कल्पितसुरैश्वर्यादिका शक्तिदा-
यद्वन्द्या विबुधोत्तमोत्तम शिवाजाभ्यां जयेज्जानकी ॥६॥

याश्लाघ्या विशदैः सदाशुभतमैर्नित्यै रनन्तैर्गुणैः-
सर्वासुभ्यपदेश्यतामभिगता या चाङ्गनास्वेकिका ।
यालं पातुमशेषमेतदखिलात्संघाद् दृढादंहसां-
सा मां पातु सकृत्प्रणाम वशगा श्रीरामरासेश्वरी ॥७॥

यस्यै सिन्धुरमन्थ्य बन्धि च दिशां कीशामहीशाश्रये-
राहूता निहताश्च राक्षसगणाः लङ्का कलङ्की कृता ।
स्वास्थ्यं प्रापययैव साधुषु भयं त्रैलोक्यमोकश्च्युतं-
सा नः साधयतु स्वकान् भगवती श्रीरामदेवीन्दिरा ॥८॥

सुश्रोणी च सुमध्यमा च सुनखी चार्वाङ्गिनी चारुदा–
कामानामनुकम्पिनी च कमनीयाकारसंगोपिनी ।
लीलामन्थरगामिनी च महनीया या जगन्मोहिनी–
भूयान्मे हृदये प्रसन्नहृदया रामस्य सा भामिनी ॥९॥

आस्ते धार्मिनि राम वाम दिशि या भक्ताश्रया भेजुषां–
वह्नौ वारि रवौ च खे भुवि सतां चित्ते च चन्द्रेऽम्बुजे ।
यादोषा जगदीश्वरी त्रिजगतां स्थेम्ने सदेयं सती–
सीता नः शरणं तमोन्ततरणि ज्ञानाग्नि रम्यारणिः ॥१०॥

स्याद् यत् कारितमेव सर्वममृतं कैङ्कर्य मात्मार्चितं–
तां भक्तिं परमां परां च परमं ज्ञानं च तन्मे दिश ।
अस्त्येतत् त्वदधीनमेव सकलं साकेतनाकेश्वरि–
प्राणेशीत्यभिधीयसे रघुकुलश्रीचन्द्र–कीर्ति–विभाः ॥११॥

शृङ्गारादि रसाश्रयं च चरितं रामायणं ते विदुः–
सन्तानाख्यमशोक नामकवनं स्थानं विहर्तुं च ते ।
सर्वेशस्त्वदधीन सर्वं विभवानन्दोत्सवं चेश्वराः–
किन्नान्यत् तव भूमिनन्दिनि भवेद् भोगोपकारक्षमम् ॥१२॥

त्वल्लाभेन निजानुजानुग सुहृन्मित्रादि लोकक्रमात्–
सर्वं लाभमशेषकर्मकतया शेषस्य श्रेणीं स्वयम् ।
हानिं त्वद् व्यतिरेकतश्च भगवान् कान्तो हि ते मन्यते–
तत् त्वामेव भजे विजेन भजतां भाव्यावधि भो कुजे ॥१३॥

औदार्यं परमं दया च परमा क्षान्तिः क्षितेरप्यलं–
स्वाकारत्रयमेतदक्षयतत् श्रुत्यादिसिद्धं तव ।
एषामीश्वरिकस्यचिद्विषयतां लभ्यां लभे यामलां–
या लब्धाधम जन्मजातिचरितैरप्यादि देवि प्रिये ॥१४॥

रम्याङ्गि त्वदपाङ्गमेव मनुते कान्तोऽमृतं नामृतं–
तस्याशेष विशेष युक्त जगतां भर्तुर्यदेवामृतम् ।

दासानामपि नस्तदेव सुहितं दास्ये सदा तस्थुषां—
निर्विघ्नैः सुमृदुत्सवैस्तु भवतो रेवोत्सवा नः परे ॥१५॥

श्री अङ्ग की दिव्य सुगन्ध–परमोज्वल दिव्य वर्ण–अत्यन्त सुकुमारता–कोमल स्वभाव-केलि कौतुक बढ़ाने वाली लीलायें–अमृत बरसाने वाला मधुर सङ्गीत–मृगी के समान नेत्रों का प्रेम कटाक्ष–कल्पना मात्र से ही देवताओं को विमुग्ध करने वाली अनन्त शक्तियों को प्रदान करने वाला विपुल वैभव-ये श्री जू की स्वाभाविक सुन्दर गुण गणावली प्रियतम श्रीराम के प्रयास श्रम को सद्यः निवारण कर देती है, ऐसी देवताओं में सर्व श्रेष्ठ देव शिव–ब्रह्मादिक देवताओं द्वारा वन्दनीय श्रीजानकीजी का सदा विजय हो ॥ ६ ॥

सर्वोत्तम-नित्य-अनन्त गुणों के कारण जिनके चरणों की सेवा करना सब चाहते हैं, सभी यही कहतेहैं कि स्वामिनी हो तो ऐसी ही हो, इतना ही नहीं ठीक ऐसा मानकर सर्वश्रेष्ठ अङ्गनायें भी जिनकी चरण सेविका बन गयीं हैं। जिनकी कृपा दृष्टि का अवलोकन सम्पूर्ण दुःखों के समूह पर वज्रपात जैसा दारुण प्रहार कर उनका निःशेष विनाश कर देता है, ऐसी एक ही बार प्रणाम करने मात्र से ही प्रसन्न होकर वशीभूत हो जाने वाली श्रीरामरासेश्वरी श्रीसीता सदैव मेरी रक्षा करें ॥ ७ ॥

जिसकी प्राप्ति के लिये प्रभु ने क्षीरसागर का मन्थन किया, तथा समुद्र पर सेतु बांधा ऋक्ष वानरोंके राजाओंको एकत्रित किया–राक्षस गणों का संहार किया–लङ्का को कलङ्कित किया, साधु जनों को निर्भय किया–त्रैलोक्य के अधिपति देवताओं को बन्धन से मुक्त किया–तब कहीं श्री किशोरी जी को प्राप्त कर श्रीराम स्वस्थ तथा सुखी हुए, वही श्रीराम प्रभु की इन्दिरा (महालक्ष्मी) अपने निज सेवक जन हम सबका कल्याण साधन करें ॥ ८ ॥

जिनके अङ्ग प्रत्यङ्ग परम सुन्दर हैं अतएव सुश्रोणी हैं, जो मध्य कटिभाग में भी अति सुन्दर सुमध्यमा है, जो सुन्दर चन्द्रमा के समान नखों वाली है, सुचारु सुन्दरियां जिनकी पूजा करतीं हैं, जो स्वयं सुचारु अङ्ग वाली हैं, जो सकाम भक्तों पर अनुकम्पा करने वाली हैं, अति कमनीय जिनकी दिव्य काया है, जो लीला कोतुक में गजगति के समान धीरे–धीरे चलने वाली है, जो महानों की भी महान् है, तथा जो अखिल जगत् को मोहित करने वाली है, वह श्रीरामजी की प्राण वल्लभा-प्रसन्न हृदय वाली श्रीसीताजी हमारे हृदय में निवास करने वाली हैं ॥ ९ ॥

जो दिव्य धाम में श्रीराम के वामाङ्ग में विराजी हैं, जो भजन करने वाले भक्तों का परमाश्रय है, जो अग्नि–जल–सूर्य–आकाश–पृथिवी–चन्द्र–कमल–जल तथा सज्जनों के चित्तमें निर्दोष निर्विकार स्वरूप से विराजमान है, जो त्रिभुवन को सदैव स्थिरता प्रदान करने वाली महान् सती हैं, वह अन्तः करण के अन्धकार को नष्ट करने वाली सूर्य स्वरूपा तथा ज्ञान रूपी अग्नि को प्रज्वलित करने वाली अरणी के समान श्री सीता हम सबका एक मात्र शरण (आश्रय) हों ॥ १० ॥

जिसके रहने से हम जो कुछ भी करें वह सब कुछ अमृत मय हो जाता है, हमारे सब कार्य आपकी पूजा स्वरूप कैङ्कर्य सेवा हो जाते हैं, ऐसी परम प्रेम रूपा परा भक्ति तथा ऐसा परम ज्ञान आप कृपा कर हमको प्रदान कीजिये। क्योंकि ऐसा हो जाना सब कुछ आपके ही अधीन है, हमारे वश की बात नहीं है। हे श्रीसाकेत धामेश्वरी ? आप श्रीराम की प्राणेश्वरी हैं, तथा आप रघुकुल के श्रीचन्द्र स्वरूप श्रीराम की कीर्तिरूपी किरणों को प्रकाशित करने वाली हैं॥ ११ ॥

शृङ्गारादि नव रसों का भण्डार श्री रामायण आपका ही दिव्य चरित्र है, सन्तानाख्य अशोक वन आपकी विहार स्थली है, सर्वेश्वर परम ब्रह्म श्रीराम आपके प्रेमाधीन हैं, सर्व वैभव तथा आनन्दोत्सव सब आपके आश्रित है, सँसार में ईश्वर कहाने वाले देव आपकी कृपा चाहते हैं तब हे श्रीभूमि नन्दिनी अन्य ऐसी कौन भोग्य वस्तु है जो आपको सहज सुलभ प्राप्त न हो॥ १२ ॥

आपकी प्राप्ति ही सर्व लाभों में उत्तम लाभ है, तथा आपकी प्राप्ति न होना ही सम्पूर्ण हानियों में महान् हानि है, ऐसा शेष के भी शेषी आपके प्राणपति भगवान् स्वयं मानते हैं। उसी प्रकार आपके लाभ से ही अपना परिकर पार्षदों का अनुज भ्राताओं का तथा सगे सम्बन्धी स्नेही मित्रों का परम सुख प्रभु मानते हैं, ऐसी महान् सुख स्वरूपिणी दूसरों के द्वारा भजनीया भव्य भावना की सीमा आपका ही, हे भूमि नन्दिनी ! मैं भजन करता हूं॥ १३ ॥

परम उदारता-अत्यन्त करुणा-पृथिवी से भी अधिक सहन शीलता क्षमा-आकारत्रय (प्रभु का ही मैं अनन्य शेष हूं-प्रभु ही मेरे एकमात्र पूज्य हैं, तथा प्रभु का ही मैं भोग्य हूं अन्य किसी का भोग्य नहीं हूं,) रहस्य का स्वरूप ज्ञान कराना ये सब गुण आपके दिव्य तनु में श्रुति-स्मृति-वचनों से सुप्रसिद्ध अखण्ड अक्षय निवास करते हैं। हे परमेश्वरी ! इन दिव्य गुणों में से मैं भी किसी गुण का कृपा भाजन हो जाऊं, ऐसा कर दें क्योंकि जब आप ही परम निर्मल होकर भी अधम जन्म-अधम जाति तथा अधम कर्म करने वाले को भी लक्ष्य हो जाती हो तो हे देवि ! हे राम प्रिये ! आपके इन गुणों का प्रसाद भी हम लोगों को अवश्य मिलना चाहिये॥ १४॥

हे रमणीय कोमलाङ्गी ! आपके कान्त श्रीराम तो अमृत को अमृत न मानकर आपके सङ्ग रहना ही देवामृत से अधिक प्रिय मानते हैं, तथा यही बात समस्त जगत् के लिये भी वही परम हितकर है, क्योंकि सदैव दास्य भावना में रहने वालों को निर्विघ्न भगवदीय आनन्दोत्सव का परमोल्लास आपकी ही कोमल कृपा से प्राप्त हो सकता है। अन्य कोई आधार है ही नहीं॥ १५ ॥

यावन्तस्तव सत्स्तवस्तवकभृग् भूमेस्तनूजे चिराद्-

व्यापाराः स्वपरप्रयोजन पराः भर्तुश्च ते सर्वदे।

निस्सीमामर भाव भावकतया सर्वेऽपि ते सर्वदा-

सिद्धा शुद्ध सुधैव साधु विदिता स्वाद्य प्रसाद्यावधेः ॥१६॥

रोचन्तामिह मे चिरन्तन तनो श्चार्वङ्गि चारुस्मिते—
सर्वाण्येवहि चेष्ठिता च चपलापाङ्गचास्तवापाङ्गतः ।
यान्यालम्व्य विलम्बितालकभुजाम्भोजाक्षि दाक्षिण्यभू—
र्भर्ता जीवति जीवलोक जनको जीवैक जीवातुकः ॥१७॥

गन्धर्व्यः कुशलाः कलास्वशिथिलाः किन्नर्य्यमर्य्यान्विता—
विद्याधर्य्य युतैः समं च मनुजा कोटीभिराटीकिताः ।
सेवन्ते सततं परः शतशती कोट्यश्च यां जानकीं—
सेवे या पुनरागते पुनरिमां सेव्यावधिं शेवधिम् ॥१८॥

आविश्वस्य सुखागतो रघुपतेरेकैकमङ्गं द्यलम्—
यस्या आलभतेऽमुमेव हि समम् तैस्तैरनर्घ्यैः शुभैः ।
यद्योगादुपरि प्रतिष्ठितमहो भाग्यं भगेभ्यो मुदे—
सात्वंजः सुरसुन्दरीप्सितयशः सौभाग्यरूपेह नः ॥१६॥

दुःखानि त्वदुपेत्य यैव कुदृशां कल्प्यन्त इत्याकलं—
सौख्यानि त्वदपेक्षयैव सुदृशां दृश्यन्त एतादृशम् ।
पूर्वासामपि माकरोतु विषयं कुर्य्याच्च मामंक्ति मे—
त्येवं प्रार्थ्यस एव रामरमणि त्वांसम्पदां स्वामिनीम् ॥२०॥

सर्वासामविशेषतश्चिदचितां चिन्त्यामचिन्त्याद्भुते—
सत्तामाहु रसत्वराः सुमनसो श्रीरामचन्द्राश्रयाम् ।
त्वामेवाश्रयतेऽस्य तु प्रतिपदं सत्तादि सर्वं यतः—
सेव्या सा च ततस्त्वमेव जनकाम्भोधि प्रसूते प्रसूः ॥२१॥

हे भूमिसुते ! जितने आपके सुन्दर स्तोत्र हैं वे सब के सब अत्यन्त तेजस्वी हैं, अपने लिये तथा परोपकार के लिये किये गये आपके तथा आपके प्राणपति के द्वारा किये गये सभी कार्य उसी प्रकार निस्सीम अमर भावना से भरे हुए हैं, हे सर्वस्वदान देने वाली दानियों में शिरोमणि ! आपके वे सभी कार्य शुद्ध सुधा धारा जैसे निर्मल, साधुजनों को सुविदित, सदैव परम सुस्वादु तथा प्रसन्नता की सीमा स्वरूप ही है ॥ १६ ॥

हे सुन्दर अङ्ग वाली ! हे मधुर मन्दस्मिते ! आपके श्रीअङ्ग में चिरन्तन काल से

विराजमान चपलता, सुन्दरता ललित चेष्टायें इत्यादि सब हमको बहुत प्रिय लगते हैं, हे कमल नयने ! हे चतुराई की निवास भूमि ! और भी जो आपके दिव्यानन्द प्रद गुण आपका अवलम्ब लेकर रहते हैं, हे सर्व जीवलोक को शरण देने वाली ! उसी के आधार पर आपके भर्ता का जीवन है, वे किस जीव को जीवन दान नहीं देते हैं, अर्थात् सभी जीवों का भी जीवन आप ही हैं ॥ १७ ॥

गान विद्या में कुशल गन्धर्वियां, अपनी कला में कहीं भूल न करने वाली सदैव साव-धान किन्नरियाँ, विद्याधरी तथा परम चतुर मानवियाँ लाखों करोड़ों एक वार एकत्र होकर श्री जानकी जी की सेवा करती हैं, सेवा करके जाती हैं परन्तु सन्तुष्ट न होकर पुनः पुनः सेवा में उपस्थित होतीं हैं। ऐसी सेव्य स्वरूपों में परम श्रेष्ठ-कल्याण की सीमा-आपकी सेवा हमको भी प्राप्त हो यही वारंवार प्रार्थना है ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण विश्व को सुख से भर देने के लिये श्री रघुनाथ जी के एक-एक अङ्ग का दर्शन ही पर्याप्त है, ऐसे श्रीराम भद्र प्रभु परमानन्द प्राप्ति के लिये जिसका आलिङ्गन करते हैं, आपके ऐसे ही परम शुभ तथा निर्दोष निर्मल सभी गुण हैं। जिसके संयोग से सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से भी सर्वोपरि अहोभाग्य उनका सुप्रतिष्ठित है, ऐसा भगवान् के लिये भी माना जाता है, वही आप सुर सुन्दरियों को भी अभिलाषा उत्पन्न करने वाले सुयश तथा सौभाग्य से परिपूर्ण हमारी इष्ट देवता हैं ॥ १९ ॥

कुत्सित कर्म करने वालों की आप उपेक्षा कर देती है बस, तुरन्त वे दुःखों के सागर में डूबने लगते हैं, उसी प्रकार सज्जन पुरुषों को आप सुदृष्टि से अवलोकन करती हैं तो उनको चारों ओर आनन्द ही आनन्द दीखने लगता है। हे अम्ब ! पहले वाले दुर्जनों की भाँति हमारी उपेक्षा न कर अन्तिम सज्जनों की भांति हमारे पर भी आपकी सुदृष्टि रहे हे राम रमणी ! है सर्व सम्पदाओं की स्वामिनि ! हमारी यही आपके चरणों में प्रार्थना है ॥ २० ॥

चित्-अचित्-चिन्त्य-अचिन्त्य-अद्भुत सभी प्रकार की सत्तायें श्री रामचन्द्र जी के ही आश्रयभूता हैं ऐसा सुबुद्धि मन वाले विद्वानों ने सत्वर (तुरन्त) कह दिया है। परन्तु चित् अचित विशिष्ट ब्रह्म भी आपका ही पग-पग पर आश्रय लेता है, क्योंकि सर्वेश्वर की सम्पूर्ण सत्ताओं की अधीश्वरी तो आप ही हैं, इसलिये श्री जानकी जी के प्रेम समुद्र से उत्पन्न हे महा लक्ष्मी ! हमारे लिये तो केवल आप ही परम सेव्या हैं ॥ २१ ॥

ऐश्वर्यं परमं निरन्तर महानन्दाम्बुधौ ते प्रिये—
माधुर्यं त्वयि चानुपद्धयनवधि बाध्याद्य बाध्यस्त्विपि ।
आभ्यां वां मिथुनं समन्वित महोहर्षाश्रु धारादिकम्—
कुर्य्यात्कस्य न चेतनस्य विदुषो शेषोत्सवं जानकी ॥२२॥
पत्युस्ते परमेश्वरस्य परमो सागस्सुकोपोवली—

त्वद्भङ्गया परिपोषितेषु च यतस्तेषु प्रसादोऽप्यलम् ।
कोऽप्यश्चेत्तव कोपराव कुपिता प्राणप्रिये प्रेमदे—
त्राणं त्वच्चरणं व्रजामि शरणं सीते विनीते ततः ॥२३॥
पश्यन्नप्यनिमेष एव भवतीं सर्वानुभूतिः सदा—
सीते नित्य निजानुभूति परमोऽप्येकान्त भावांप्रियः ।
तृप्तिं नैति यदत्र हेतुरुचितो नाल्पत्वमंगाः श्रियां—
किं त्वानन्त्य नवीन ते प्रतिकलं कामित्व मप्यस्य च ॥२४॥
अन्वेत्रमविकाशिनीं सकणिके धत्से धरोत्थे च यत्—
कान्तस्याप्यमृताङ्ग संहति रुचोपींप्सोरपि त्वां सदा ।
कामाग्निः ज्वलितावलोकन भयात् तत् किं शशाङ्कस्मिते—
जानात्येव तव प्रभावममलः कामानलः किं खलः ॥२५॥
दह्येतस्मर वह्निनावनिसुते कान्तोनितान्तं न चेद्—
वर्तेथाः हृदयेऽस्य जात्वपि जगज्जीवातु भूतस्थिते ।
दह्यन्ते दुरिताग्निनेह खलु ते येषां हृदि त्वं न यत्—
तस्माद्योगि भिराहितासि हृदये हार्दे श्वराह्लादिनी ॥२६॥
केऽयं ते वदनाम्बुजे जनकजे स्वल्पाप कल्पोपरि—
नव्यानल्प रसोत्सवावलिकरी निश्शल्य शैलीसुवाक् ।
यां श्रोतुं सरसः पुनः पुनरहो प्रेयान्प्रसङ्गोत्तरैः—
स्त्वां स्तौति स्व सरस्वती सुविदिता श्रीमैथिली त्वां भजे ॥२७॥
वागीशाननवद्य सौभगयशो वक्तुं प्रविष्टायिते—
सौन्दर्य्यातिशयैक दर्शन भवप्रेमाविशालाक्षि सा ।
ज्ञातुं द्रष्टुमपीश्वरी न भवती पादप्रसादैषणी—
तुष्णीमेव नमस्करोति च हृदा त्वां स्तौति सीते शनैः ॥२८॥
त्वत्सौन्दर्यं निरन्तरेक्षण रस प्राणात्मसंजीवनी—
निद्रां नैति यदीश्वरस्तद विना तद्योगनिद्रेति सा ।
द्रष्टुं त्वच्चरणश्रियं यहिसमुत्कण्ठेत को मैथिली—
क्षुद्रानन्दतया प्रसिद्धिमगमन्नन्येऽनुकूलास्ततः ॥२९॥

महान् आनन्द के सागर में निमग्न कर देने वाला आपका परम ऐश्वर्य तथा व्याधि उपाधि से रहित अप्रतिम आपका माधुर्य एवं आप दोनों युगल प्रभु का सम्मिलित लीला विहार देख कर कौन ऐसा विद्वान् चेतन पुरुष है जिसके हृदय हर्षोन्मत्त होकर आनन्दाश्रुधारा प्रवाहित न कर देता हो। हे परम प्रिय श्रीजानकीजी ! आपका सदा जय हो ॥ २२ ॥

आपके प्राणपति परमेश्वर के साथ केलि कौतुक करते समय कभी-कभी प्रणय कोप का प्रदर्शन जब आप करती हैं, तब मान लीला भी चलती है, परन्तु तुरन्त ही आपकी प्रेम भरी मन्द मुसुकान की भावभङ्गी देखते ही आपके प्रसाद का परिपोषण पाकर प्रभु परम आनन्दित भी हो जाते हैं। तब कौन ऐसा है जिसके पास जाने से कोई आपकी दया दृष्टि विना परित्राण प्राप्त कर सके। अतः हे प्राणप्रिये ! हे प्रेम प्रदे ! हे सीते ! मैं आपकी चरण शरणागति ग्रहण करता हूँ ॥ २३ ॥

अनिमेष (देव) न होते हुए भी एकान्त भाव प्रिय प्रभु आपके स्वरूप का दर्शन कर अनिमेष हो जाते हैं। (उनको टकटकी लग जाती है, नेत्रों की पलके नहीं गिरती हैं) जो सदैव सर्वानुभूति करने वाले निजानुभूति आत्मानन्द में ही परम तृप्त रहने वाले हैं उनको भी जब तृप्ति नहीं होती है, इसमें कोई उचित कारण अवश्य ही है, यह कोई अल्प श्री के आगम का फल नहीं है यह तो अनन्तानन्दप्रद नित्य नवीन आपके प्रतिक्षण कामना बढ़ाने वाले स्वरूप का अद्भुत प्रभाव है ॥ २४ ॥

हे धरणिजे ! अपने प्राणेश्वर के अमृतमय अङ्ग का सङ्ग करने के लिये आप उनको अपने उन्नत हृदय से सदैव आलिङ्गन करती है वह जलती हुई कामाग्नि के भय से तो कभी कर ही नहीं सकती है, क्योंकि आपके प्रभाव रूपी अनल की भयङ्करता कामानल स्वयं जानता ही हैं तब हे चन्द्र वदनी ! वह खल आपका क्या विगाड़ सकता है। अर्थात् आपका स्मरण ही कामानल की व्यथा शान्त करने में परम समर्थ है, तब वह आपके सामने देख ही कैसे सकता है? ॥ २५ ॥

यदि ऐसी बात न होती तो आपके प्राणपति हे धरणि नन्दिनी ! स्वयं तो कामाग्नि से जलते ही परन्तु उनके भीतर निवास करने वाले जगत् के सभी भूत प्राणी समेत ये ब्रह्माण्ड भी जल जाते, यदि आप उनके हृदय में न होती। इसीलिये हे ईश्वर को भी आह्लाद प्रदायिनी ! योगीजन सदैव आपको अपने हृदय में धारण किये रहते हैं ॥ २६ ॥

हे जनकात्मजे ! आपके मुख कमल में यह स्वर्ग की सुन्दरियों को भी लज्जित करने वाला नवीन आलियों के हर्ष रसोत्सव की परम्परा की धारा प्रवाह बहाने वाला, हृदय के शूल को हरण करने वाला कैसा सुन्दर स्वरालाप विराजमान रहता है? जिसका श्रवण करने के लिये प्रियतम पुनः पुनः प्रश्नोत्तर द्वारा सरसता बढ़ाते रहते हैं, तथा स्वर्गीय सरस्वती आपकी स्तुति करती रहती है। ऐसी सुप्रसिद्ध हे श्री मैथिली जू ! मैं आपका भजन करता हूँ ॥ २७ ॥

वागीश्वरी आपकी सौभाग्य शीलता आदि गुणों का वर्णन करने के लिये बड़े गौरव से

आपके महल में प्रविष्ट हुई, परन्तु जब उसने आपके लोक विलक्षण अतिशय सौन्दर्य का अपनी विशाल आंखों से दर्शन किया तब सरस्वती जी उसके यथार्थ ज्ञान प्राप्त करने की कौन कहे देखने में भी समर्थ न होकर आपके श्रीचरणों का प्रसाद पाने की इच्छा से मौन होकर हृदय में ही धीरे-धीरे चुपके से स्तुति करती हुई नमस्कार करने लगी ॥ २८ ॥

अपनी प्राण आत्म सञ्जीवनी आपके सौन्दर्य का निरन्तर निरीक्षण करने के ध्यान में मग्न परमेश्वर श्रीराम आपके विना सुख से सोते भी नहीं हैं, इसलिये प्रभु की निद्रा को लोग योगनिद्रा कहते है, ऐसे आपके श्रीचरणों की शोभा निरखने के लिये है, श्रीमैथिलीजू ! कौन अभागा उत्कण्ठित न होगा ! इसी लिये आपकी कृपा सुख के विना संसार के महान् से महान सुख भी 'क्षुद्रानन्द' नाम से प्रसिद्ध हो गये हैं । तथा आपकी अनुकूलता का सुख ही परमानन्द कहा गया है ॥ २९ ॥

सर्वे धर्म मुहुर्यतः सहृदया सन्तो गुणाश्चामलान्–
वैमुख्यं पदपद्मयोस्तव मम स्वप्नेऽपिमा भूद्तः ।
भर्तापि त्वद्दर्शनेन विदुषां सेव्योऽपि दुःखी भवे–
न्नान्यः कः पृथिवी सुतेऽञ्जलिरियं तुभ्यंकृतस्तन्मया ॥३०॥

वैदग्ध्यं नृषु गोपितं तव भवेदज्ञान मुग्धेषु यत्–
तस्मात्सेवितमिष्यसेष्यविदुषामानन्द मुग्धा सती ।
सौलभ्यं तत एव सेवनविधावागः क्षमाप्येषु ते–
रामस्याश्रयणोचितामृत गुणांभोधेः प्रमोदोदये ॥३१॥

मुग्धाया श्चरितैरपेतदुरितैस्तुच्छीकृतान्योत्सवै–
र्विद्वांसोऽपि सुनिश्चितार्थ निचयाः सर्वेऽपिमुग्धीकृताः ।
सर्वज्ञः स्वत एव सर्व सुशकः शेषेष्वमीषां पति–
र्नीतिस्ते सुविधेयतां वसुमती पुत्रि प्रभावान्नते ॥३२॥

यद्यद् दृष्टमनिच्छयापि सदृशासीते त्वयातत्क्षणात्–
स्याद्देवामृतमेव देवरुचिरं तत्तत् सदभ्यर्हितम् ।
युक्तं पादरजःकणेन किमुत स्वीकार्यतागोचरं–
यत् यत्स्यान्ममतास्पदंतवसतां तन्मूर्द्ध रत्नं न किम् ॥३३॥

या देव्याःप्रमितंगता वररुचोऽचिन्त्यप्रभावास्तु ता–
यावत्शक्ति पदाभिधानविषयाः शास्त्रप्रसिद्धाश्च ताः ।

त्वत्पादाम्बुज सेवनैक सुभगा भूतिद्वय स्वाम्यभाग्–
भुज्यन्ते जगदीश्वरैः स्थिरतरैस्त्वत्पादपद्मालिभिः ॥३४॥

त्वत्स्वीकारवताङ्कवन्तु भगवाँ स्त्वामश्नुते राघव–
स्वीकारेण न जायते किमपि ते न्यौन्यं महिम्नि परे ।
जाने जानकि भुज्यसे सुसरसा सर्वाङ्गना स्वामिनी–
श्रृंगारेनिरपेक्ष्यताप्यनुचिता पूर्तैस्तु वै देशिकैः ॥३५॥

आनन्दोऽस्यकिमु त्वदेक शरणः स्यात्सत्त्वदीयः किमु–
श्रीरामैक निबन्धनो निरवधिर्जातु स्वतन्त्रो न सः ।
दाम्पत्यं कथमन्यथा न वितथं स्याद्वैदवेद्य हि तत्–
यद्वास्यात्तद वच्छिदा स्वविधया सीतेत्वमेव स्वतः ॥३६॥

धर्मोरूपमदश्रयद्धि भगवान् लोकोपकारेच्छया–❀
तेनैव त्वमपीह भौमि भवसि स्वातन्त्र्य भङ्गोऽत्र किम् ।
अन्योन्याश्रयणं न दूषणमिदं तर्कातिगौ यद्यु वा–
मन्योन्यं समतां गतौकुल तुला मप्यागतौ सद्गुणैः ॥३७॥

भेदे सत्यपि तात्विके तव ततस्तत्वाश्रुता सारदे–
त्वद्रूपौषध यंत्रमंत्र वशगो विश्वप्रिय स्त्वन्मयः ।
पश्यत्यस्यतु संभ्रमं जनयसि स्वीयैर्विलासैर्यतः–
तस्मादस्य विलासिनी त्यजसि तेहामुत्र चेलात्मजे ॥३७॥

श्रृंगारस्य महोत्सवस्य च मुदासिद्धेर्निधेः सम्पदां–
रागस्योत्तम लक्षणं च महसां भाग्यस्य पूर्णस्य च ।
माधुर्य्यस्य च मार्दवस्य महतामाध्यान माङ्गल्ययोः–
प्रेमस्त्वां स्थिरमाश्रयेत वरदे सीते सुगीते मम ॥३९॥

नेत्राली रघुनन्दनस्य वशितं यत्रेति सद्योगिनां–
यत्रान्तः करणानि चोपनिषदां हृद्यात्रहृद्यऽर्पितम् ।
गर्वो यत्र च योषितां च गलितोक्षेमःसतां सद्गिरां–
तस्मिंञ्छ्री चरणेऽनुरागवद्वो मद्भाग्यमेतद् ध्रुवम् ॥४०॥

❀ पाठान्तरम्– सापेक्षस्तत्र्यैक नैज भगवत्तायांपतिरते सदा ।

आपके स्मरण करने से ही सभी धर्म धीरे-धीरे स्वयं हृदय में प्रकट हो जाते हैं तथा सहृदय सन्तों के निर्मल सद्गुणों का भी उदय हो जाता है। अतएव आपके युगल श्रीचरण कमलों की विमुखता स्वप्न में भी मेरे हृदय में कभी न हो। क्योंकि आपके दर्शनों के बिना सर्व सन्त जन सेव्य आपके भर्ता श्रीरामजी भी दुःखी हो जाते हैं तब संसार में दूसरा आपका चरणाश्रय त्याग कर कैसे सुखी हो सकता है। अतएव हे पृथिवी कन्या श्रीजानकीजी मैं वारंवार हाथ जोड़कर यही प्रार्थना करता हूं कि आपकी अविचल भक्ति मुझमें बनी रहे ॥ ३० ॥

आपने अपना भोलापन नरलीला नाट्य में गुप्त रखा है, जो मुग्ध (मूर्ख) जनों के लिये अज्ञान कहा गया है, इसलिये आनन्द मुग्धा होने पर भी अज्ञानी लोगों का उद्धार करने की भावना से उनके साथ रहना चाहती हो, यही कारण है कि आप अत्यन्त दुर्लभ होते हुए भी परम सुलभ हो गयीं हैं। आपकी यह क्षमाशीलता आपकी सेवा करने में हमारी परम सहायक हो गयी है, हे मां ! आप श्रीरामजी के आश्रय करने योग्य अमृत गुणों के महान् सागर हैं, तथा उनके प्रमोदानन्द का उदय करने वाली है ॥ ३१ ॥

समस्त पापों को नष्ट करने वाले, अन्यान्य आनन्द उत्सवों को तुच्छ कर देने वाले मन को मुग्ध करने वाले, आपके विचित्र चरित्रों ने वेद वेदान्त के सुनिश्चित अर्थों को जानने वाले विद्वानों को भी विमुग्ध बना दिये हैं, जो सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान् है, अनन्तानन्त चेतनों के एकमात्र शेषी (स्वामी) हैं, हे वसुमती की पुत्री ! उनको भी आपने आपना आज्ञाकारी बना रखा है, ऐसे आपके प्रभाव की उन्नति का वर्णन हीं कौन कर सकता ! है ॥ ३२ ॥

हे सीते ! आप बिना इच्छा के ही स्वाभाविक रूप से सहज स्वभाव से जिस-जिस वस्तु को देख लेतो है, वह भी उसी क्षण देवताओं को रुचिर लगे ऐसा अमृतमय हो जाता है, सज्जन गण भी उसका आदर करने लगते हैं। तब जो-जो आपके श्रीचरणों की रज कण से युक्त हो गया तथा आपके ही सान्निध्य में निवास करने का सौभाग्य प्राप्त कर लिया वह ममता-स्पद बन जाय रसमय आनन्दमय बन जाय इसमें आश्चर्य ही क्या है ॥ ३३ ॥

हे देवि ! जो आपके हो गये, जिनकी श्रेष्ठ रुचि आपकी सेवा में हो गई, वे तो अचिन्त्य प्रभावशाली हो गये, क्योंकि उनकी शक्ति आप से संयुक्त हो गयी। यह तो सुप्रसिद्ध बात है कि जिन्होंने आपके चरणारविन्द की सेवा का सौभाग्य प्राप्त कर लिया है वे विभूति द्वय के स्वामित्व के भागीदार बनकर आपकी चरणारविन्द की सहेलियों के साथ जगदीश्वरों स्थिर के वैभव का सुखोपभोग करते हैं ॥ ३४ ॥

आपको स्वीकार करने का परम बल प्राप्त करके ही भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभु आपका सुखोपभोग करते हैं, परन्तु क्या आपको स्वीकार करने से आपकी परमोत्कृष्ट महिमा में कुछ अन्तर थोड़े ही पड़ जाता हैं, हे श्री जानकी जी ! हम यह जानते हैं कि आप सुन्दर रस-मय भावना से प्रियतम के प्रेम का रस भोग करती हैं, आप सभी अङ्गनाओं की स्वामिनी हैं, क्योंकि शृङ्गार रस में प्रियतम के प्रति निरपेक्षता का भाव सर्वथा अनुचित है, अतः रस की

पूर्ति ही सभी आचार्यो का सम्मत है ॥ ३५ ॥

श्रीराम का आनन्द क्या आपके ही अधीन है, अथवा आपका निस्सीम आनन्द क्या उनके आधीन है, यथार्थतः दोनों का आनन्द स्वतन्त्र नहीं है। परस्पर एक दूसरे का अविच्छिन्न सम्बन्ध होने से ही दाम्पत्य सुख अविचल रहता हैं, फिर भी जिसके हास्य से दोनों का आनन्द एक रस हो जाता है वह तो हे सीते! आप ही स्वयं हैं ॥ ३६ ॥

आपके पति लोक कल्याण के लिये जब-जब जैसा स्वरूप धारण करते हैं तब तब आप भी हे भूमि नन्दिनी ! उनके अनुरूप वैसा ही स्वरूप धारण कर लेती हो, इसमें आपकी स्व-तन्त्रता का भङ्ग किसी प्रकार नहीं होता है। क्योंकि आप दोनों का अन्योन्य आश्रयण कुछ भी दूषण नहीं माना जाता परन्तु भूषण ही है, तर्कना से पर आपकी अन्योन्य समता तथा तुला पर तौले गये आपके सद्गुण सदैव सुप्रकाशित हैं ॥ ३७ ॥

आपमें तथा प्रभुमें यद्यपि तात्त्विक भेद नहीं है तथापि आपके स्वरूप सौन्दर्य रूपी तान्त्रिक औषधि-यन्त्र-मन्त्र का जादू टोना कुछ ऐसा है जिससे विश्वात्मा प्रभु आपके वशीभूत रहते हैं, आपको जब वे देखते हैं तो आप ऐसा संभ्रम उत्पन्न कर देतां हैं कि आपके हास विलास में ही वे तन्मय हो जाते हैं। अतएव आप इस लोकमें तथा परम धाम में उनकी विलासिनी हैं, हे पृथिवी कुमारी, हम तो ऐसा ही जानते हैं ॥ ३८ ॥

हे सीते ! हे वरदे ! हे सुगीते ! शृङ्गार के महोत्सव का-आनन्द का-ऋद्धि सिद्धि सुख सम्पदा का-उतमोत्तम राग का-सुलक्षणों का-महान् परिपूर्ण भाग्य का-माधुर्य्य का-सुकोमलता का-महान् पुरुषों का-ध्यान तथा मङ्गल का निर्मल प्रेम आपके ही अविचल आश्रय पर अव-लंबित है ॥ ३९ ॥

नेत्रों के प्रेम कटाक्ष से जो श्री रघुनन्दन को वशीभूत कर लेती हैं, सज्जन योगी जहाँ आकर स्थिर हो जाते हैं, उपनिषद् वेदान्त का हार्दिक रहस्य जहां परिपूर्ण होता है, भक्तों ने अपना हार्दिक भाव परम हृद्य (प्रिय) जिनके चरणों में अर्पण कर दिया है, जहां सुर सुन्दरी युवतियों का गर्व गलित हो जाता है, सज्जनों की वाणी जहाँ कल्याण स्वरूप बन जाती है, उन आप श्रीयुगल प्रभु के श्रीचरणों का अनुराग मुझको प्राप्त हुआ यह मेरा अहोभाग्य है, अहो-भाग्य है ॥ ४० ॥

स्याद् यद्वा न यदि त्वदीय पदयोः सेवाधिकारो मम-
श्रद्धा शुद्धिमतोप्यनन्त कलुषमद्‌दुष्टात्म चेतसः ।
भूयान्मे तव पादपीठ विषयो भूयात्सभूयस्ततः-
तेनैवाश्रुमयेवमेव विमलो योग्यार्चने मैथिली ॥४१॥
त्वन्नेत्र द्वयतो यतो निपतति स्वेच्छेरितं देवि ते-

कान्तस्त्वापिततस्ततोऽभिपतति त्वत्केलि कामेरितम् ।
किंस्वस्मात् त्वदपांग भंगविषयो रंगोत्सव स्त्रग्विणी-
स्वर्गोऽप्यत्र निमज्जतीति मुनिभिर्ज्ञातोऽस्ति सीतेऽद्भुतः ॥४२॥

त्वल्लीलामृतसागरे सुरगुरु ब्रह्मेन्द्र रुद्रादयो-
दृश्यन्ते परमाणुवच्छ्रुतिशतैः सद्भिर्निमग्नास्तटे ।
सर्वांहो सुरमीन मण्डलगिलस्तत्रस्तुतो राघवो-
मीनेन्द्रो मधुरेश्वर ध्वजगतो ज्ञायेत सीते मया ॥४३॥

नेन्दौ पूर्णतरेऽपि नापि गवि न द्राक्षादि पाकेषु न-
क्षीरोदाब्धि नेक्षुजातिषु सुधा किंत्वङ्ग जाते तव ।
तत्राप्योष्ठपुटेऽस्ति राम महिले साक्षीह रामः सुधीः-
प्रष्टव्यस्त्वयि कः रहस्य यमिदं मिथ्या ब्रुवेऽहं यदि ॥४४॥

भ्रामं भ्राममशेषदेश विषये त्वत्पन्त भोगेच्छया-
तत्रालब्ध निजार्थितावधिमतां दुर्दूरमेयं मनः ।
दैवात्त्वन्नखपद्मराग महसां जालेपतद्विस्तृते-
विश्राम्यत्यनवद्य रामरमणे श्रान्तं चिराज्जानकि ॥४५॥

येषु ब्रह्म विरञ्चि रुद्रवपुषो मीना मुदं तन्वते-
वागीशादि घनाश्रयाघन रुचः कारुण्य वातेरिताः ।
सीतात्मामृत सागरस्य महतो रूपाद्यगाधस्य मा-
माप्यायान्तु नियन्तु रन्तिममुदस्तेते कटाक्षोर्मयः ॥४६॥

यावत्तेन भवेत्प्रसाद सुधयासिक्तः पुमान् यावत-
स्तावत्सोत्तमितोत्सवो भुविशवः सायन्ह वश्यानवः ।
त्वत्सेवार्थमुपस्थितैस्तव कृपा तीर्थावगाही ज्वलै-
स्पृष्टव्यः पुरुषोत्तमैः कथमयं स्यात्कोशलेशाङ्गने ॥४७॥

मन्वानः सविशेषतोऽखिलमिदं शेषं तवैवस्त्वयं-
शेषी सन्नपि शेष भावसरसः सुस्वावतारः सदा ।
दत्वानस्तव शेष शेष शरणी साम्राज्य मध्ये वसन्-
योऽयोध्यामधि भुज्यते जनकजे रामोऽस्मि रामस्त्वया ॥४८॥

अज्ञाना कुधियश्चमत्सरवशावक्तुं न तेऽलं गुणान्–
वोद्धारोऽपि च माधुरी गुणधुरा प्रेमांघ्र्य विद्धा भृशम् ।
किञ्चिज्ज्ञास्तु स संशयाइति ततः सीते प्रसन्ना सती–
तस्यास्ते स्तवने त्वमेव सुगुरुः स्तोतव्यशीले सताम् ॥४९॥

दिव्यापादनखावली मुदति ते श्रीरत्नदीपावली–
स्त्राद्याविर्हृदि मन्दिरे भगवतो देवस्य रामस्य मे ।
अज्ञानान्धतमोऽप्यनादि निबिडं कर्मादि चक्रादिमं–
नश्येद्वास्यनिरोधकं तु मिथिलानाथात्मजे हृद् गतम् ॥५०॥

हे श्री मैथिली जू ! यदि आपके चरणों की सेवा का अधिकार मेरा न हो क्योंकि मैं श्रद्धा शुद्धि रहित अत्यन्त दुष्टात्मा कलुषित हृदय हूं तो आप एक कृपा करिये कि मैं आपके चरणों की खड़ाऊं (चरण पादुका) बन जाऊँ, वहीं अपने पापों का स्मरण कर पश्चाताप के आंसू बहाते बहाते आपकी अर्चना का अधिकार भी मुझे कभी प्राप्त हो ही जायगा ॥ ४१ ॥

आपके दोनों नेत्रों के संकेत से अपनी स्वेच्छा पूर्वक लीला कोतुक करने की भावभङ्गी आपके प्राणनाथ देख लेते हैं तो वे भी नेत्रों के संकेत से ही उसका उतर देकर इच्छित केलि करने की स्वीकृति प्रदान करते हैं, उस समय कौन सा ऐसा आनन्द है जो वहां न वरस पड़ता हो, हे रङ्गोत्सव मालिके ! जिसमें स्वर्ग का दुर्लभ सुख भी निमग्न हो जाता है हे सीते ! ऐसे आप युगल प्रभु के अद्भुत लीला विहार को आन्तरिक भावना से भजन करने वाले मुनीन्द्र गण ही जानते हैं ॥ ४२ ॥

हे सीते ! आपके लीलामृत सागर में सुरगुण बृहस्पति–ब्रह्मा–रुद्र–इन्द्रादि देवगण परमाणु जैसे छोटे दीख पड़ते हैं । तथा सैकड़ों श्रुतियों का सार समझाने वाले तो उसके तट पर ही डूब जाते हैं । हम सब आपकी सेवा में रहने वाले मीन मण्डल के समान है तथा माधुर्य ऐश्वर्य की ध्वजा लहराने वाले श्रीराघव जू मीनेन्द्र हैं ऐसा प्रतीत होता है ॥ ४३ ॥

हे श्रीराम महिले ! शरद पूर्णिमा के पूर्ण चन्द्रमा में, गाय के दुग्ध में, द्राक्षा के पाक में, क्षीर समुद्र में, इक्षु के रस में, कहीं भी सुधा माधुरी नहीं है, सुधा तो आपके श्रीअङ्ग में हैं, उसमें भी सर्वाधिक आपके अधरामृत में हैं, इसकी साक्षी परम सुधी श्रीराम ही दे रहे हैं । यदि मैं असत्य बोलता हूं तो आप कभी स्वयं ही इसमें क्या रहस्य है ? अपने प्राणनाथ से पूछ लेना ॥ ४४ ॥

अत्यन्त संसारिक भोग भोगने की इच्छा से देश–देश में गाँव गांव में भटक भटक कर थक गया, तब मिला भीख मागने का धन्धा, मेरा यह मन बड़ा ही दुराग्रही है परन्तु दैवयोग से आपके चरणों के नख के पद्म राग का महान् विस्तृत सुशीतल जल में अति पावन विश्राम लेने का सौभाग्य आज प्राप्त हुआ है, हे श्रीजानकीजी ! अतएव आज चिरकाल के पश्चात् शान्ति

प्राप्त हुई है ॥ ४५ ॥

जिस श्रीसीता स्वरूप अमृत के महान् रूप गुणादि अगाध सागरमें परब्रह्म-ब्रह्म-रुद्रादि रूप-धारी मीन परमानन्द प्राप्त कर रहे है, श्री किशोरी जी की करुणा रूपी मेघ में पवन के सहारे वागीश्वरी आदि घनीभूत परम सुख का रसा स्वादन कर रही है। वह श्री जू का सुधा सागर कृपा कटाक्ष की उर्मियों से लहराता हुआ मुझको भी अन्तिम मोद प्रमोद प्रदान करता हुआ अपनी तरङ्गों से आ यायित सिञ्चित करता रहे ॥ ४६ ॥

हे श्री कोशलेन्द्राङ्गने ! आपके कृपा प्रसाद की सुधा से मनुष्य अभिषिक्त नहीं हो जाता है तब तक वह प्रातः काल में नवीन तथा सायं काल में पुराना होता ही रहता है। उसका आनन्दोत्सव अस्त ही रहता है, पृथिवी पर जीते हुए भी मरे के समान ही है। परन्तु जब वही आपकी सेवा में उपस्थित होता है तब आपकी कृपा रूपी उज्वल तीर्थ जल में अवगाहन (स्नान) करते ही बड़े-बड़े श्रेष्ठ पुरुषों में उत्तम महा पुरुषों द्वारा पूछने योग्य प्रसंसनीय हो जाता है, हे श्रीकिशोरी जी ! ऐसा आपका क्या विलक्षण प्रभाव है ॥ ४७ ॥

सर्व शेषी प्रभु यह सम्पूर्ण अखिल ब्रह्माण्ड हे श्री जू ! आपका ही शेष है ऐसा स्वयं मानते हुए शेषी होते हुए भी सरस शेष भावना रखकर हम सब जो उनके शेष हैं उस पंक्ति में आकर विराजमान हो जाते हैं, तब हमारे बीच रहकर आपके लीला सुख का उपभोग करते हैं ऐसे प्रभु अयोध्या पति राम का भी हे श्री जनककुमारी जी आप आनन्द भोग करती हैं। आपकी महिमा का वर्णन ही कौन कर सकता है ॥ ४८ ॥

हे स्वामिनी जू ! दुर्बुद्धि ग्रस्त अज्ञानी लोग ईर्ष्या द्वेष के वशीभूत होकर आपका गुण-गान नहीं कर सकते हैं। ज्ञानी पुरुष आपकी गुण माधुरी में निमग्न आपके श्रीचरणों के प्रेम में सबकुछ भूल जाने से आपका गुणगान नहीं कर पाते हैं। किञ्चित् ज्ञानी अर्ध विदग्ध-संशय ग्रस्त रहने से आपकी गुणावली का वर्णन करने असमर्थ रहते हैं, अतएव आपके गुणानुवाद वर्णन कराने में आप ही हृदय में विराजमान होकर श्री सद्गुरु बने तथा अपने गुणगान की प्रणाली सिखावें तभी कोई आपका सुयश गा सकता है ॥ ४९ ॥

हे श्री मिथिलानाथ लाडिली जू ! अनादि कर्म चक्र के घोर अन्धकार से जकड़े हुए मेरे हृदय में आपकी दास्यता का प्रति बन्धक क्या कारण है, खोजने पर भी कहीं देखने में नहीं आता है। यदि आपके दिव्य चरणों के नखों की पंक्ति के श्रीरत्नों की दीपावली भगवान् राम की कृपा से मेरे हृदय में आविर्भूत हो जाय तो मेरे दुर्भाग्य का कारण आपकी दास्यता का प्रति-बन्धक शीघ्र ही दृष्टि गोचर हो सकता है ॥ ५० ॥

याः सख्यः कलिताः सता भगवतागस्त्येन ते कोटिश-
स्ताभिस्त्वं सममेव नाथदयितं त्वाह्लादयन्ती रहः ।
मच्चित्ते स्फुरसुन्दर स्फुट गुणस्मेरायमानानना-

नामाभाव विनोदनीह जनकजे ते सदा ॥५१॥

या ते पाद सरोज सौरभ सुभग लीला सुधास्वादिनी—

॥ राम प्रेमरसोत्सुकीश्वरि गिरा सर्वार्थिनी माधिनी ।

साऽवाङ् मनसवते स्वरस्वविधुरा माधुर्य धुर्या मही—

नान्यावामनलामृतांशि सगुणं मुकल्पयेयान्यथा ॥५२॥

तावद् देवि । धिगेव जन्म जगतां स्वामित्वभाजोऽपि चेत्—

॥ ५४॥ त्वद्दासज्जनाभिमानगहनो यावन्न रामप्रिये ।

त्वत्कैंकर्य सुधासरः सरसिजैर्हंसैः प्रसङ्गी न चेत्—

काकीयः स तु कर्मतोऽशुचितमस्त्वद्भक्ति शून्यो यतः ॥५३॥

श्रुत्वा त्वन्महिमानमात्ममहितं क्लीश्येच्चयोऽसूयया—

॥ सद्यो नारकि नायकोऽपि स नरः शल्यं हृदिस्थं हि मे ।

तं निस्सारय सारतः खलु खलं प्रेत्याय श्रीजं रुपां—

श्रीरामोत्सव रत्नदीप कलिका माले विशालेक्षणे ॥५४॥

सीतेति श्रुतिजात सात्त्विक महाभावानु भावैः परः—

सर्वेषामवधीरितेतरगुणः स्वामी स्वतः शाश्वतः ।

स्यादेवं न कुतः परः परमिकां भक्तिं गतस्त्वत्पदे—

सीते निन्दति वा परः कथमिमां प्रामाणिकस्ते कथम् ॥५५॥

तत् त्वत्कान्तकथा सुधैक कलयाप्याकीलितोन्मीलितं—

यद्यद् वेदपुरःसरं सुमहितं मानं पुराणादिकम् ।

तत्तच्च प्रणमामि देवि शिरसा नान्यत्ततो नार्चितं—

सीते स्यादनिवार्यमार्य शपथैरेपक्षभावो मम ॥५६॥

देशं कालमपि प्रजां शुभतमं मन्ये त्वमेवानघे—

सीते यत्र कथा तवैव सुधया संस्पर्धमानानघे ।

गीयेत प्रतिभूत सात्त्विक भरैः श्रूयेत सर्वा मया—

तावत्तत्र कथेति साधुचरितं संजीवनं स्यान्मम ॥५७॥

तां त्वां ह्यशु च देवतां परतमां दृश्यं निवेश्य स्वयं—

सीते सर्वपुराण काननिलीनास्यस्य हास्यप्रिया ।
त्वत्प्रेयांश्च दुरूह वेदविपिने गुप्तोऽप्यमुक्ते हितः—
यद्वत्यातव मृग्यते मुनिजनैः निर्दिष्टयारिष्टया ॥५८॥
निर्मर्याद मबाधबाह ममृतं षाड्गुण्यमित्थं हरेः—
स्यादित्थं तु तवापि वामनयने वैदेहि वेद्यावधिः ।
चारुस्मेर मुखि प्रशान्त हृदये साधारणैस्ते-गुणै—
रुद्भूतैस्तु पुरस्कृतैः प्रतिहतं स्पष्टावभासं न तत् ॥५९॥
वेदैरग्नि पुरस्सराः हि मुखरादुच्यन्त एव स्थिराः—
किं त्वेते बहिरेव दुग्धघृतवत् मर्त्यैश्च तेभ्योन्तरः ।
दृष्टादृष्टतयैव सर्वकरणी सर्वावधिर्यन्मत—
स्तत् तेऽपांग विभाग रंग महिना दृष्टो मया मैथिली ॥६०॥

श्री जनकराज रूपी क्षीरसागर से उत्पन्न हे श्री जू ! भगवान् अगस्त्य ने अपनी संहिता में आपकी कोटि कोटि सखियों का वर्णन किया है वे सब आपके प्राणनाथ के सहित निरन्तर आपको आह्लादित करती रहतीं हैं, मेरी यह कामना है कि आपकी उस दिव्य झांकी का दर्शन मेरे चित्त में भी सुन्दर स्वरूप से सुन्दर गुणों से, सुन्दर विहसती हुई आपके मुख चन्द्र की छवि नाना प्रकार के भाव विनोद बढ़ाने वाली सदैव दीखती रहे ॥ ५१ ॥

हे श्री किशोरी जी ! जो वाणी आपके चरण सरोज के सौरभ से सुरभित हो, आपकी शुभ लीला रस सुधा का आस्वादन करने वाली हो, श्रीराम के प्रेम में निरत करने वाली हो, ईश्वरों की वाणी को भी मुखरित करने वाली हो, प्रेमोन्माद में उन्मत्त बनाने वाली हो, वह माधुर्य्य रस भरपूर पवित्र दिव्य वाणी मेरे मुख से निरन्तर प्रवाहित होती रहे; मेरी यही कामना है । अन्य नाना प्रकार की मिथ्या प्रलाप करने वाली वाणी से तो हे अमृताङ्गी ! मूक ही हो जाना उत्तम है ॥ ५२ ॥

तब तक मानव जीवन में द्विविधा बनी रहती हैं, भले सारे संसार का स्वामीत्व प्राप्त हो जाय तथापि जब तक आपके दासत्व का अभिमान मनुष्य को न हो जाय तथा आपके सुधा रस भरे कैङ्कर्य रूपी सरोवर की सेवा सुख स्वरूप कमलों के रसलुब्ध हंस जैसे रसिक सन्तों का सत्सङ्ग प्राप्त न हो तब तक हे श्रीराम प्रिये ! वह कर्म से महा अशुचि-अपावन आपकी भक्ति से शून्य कौए के समान ही समझना चाहिए ॥ ५३ ॥

हे विशाल नयनी ! जो आपकी महिमा को सुनकर भी आपके चरणों की भक्ति न करके अपने आत्म कल्याण के लिये व्यर्थ क्लेश उठाता रहता है, तथा आपकी भक्ति का द्वेष करता

है,नरक वह निवासियों का सिरताज है, ऐसा मनुष्य तो मेरे हृदयमें कण्टक की भाँति चुभता रहता है, हे श्रीरामजी के उत्सव की शोभा बढ़ाने वाली रत्न दीप मालिके श्री किशोरी जी ! ऐसे खेल को तो आप हमसे बहुत दूर निकाल दें, जो फिर लौट कर रोष की वृद्धि करने वाले बीज न बो सके ॥ ५४ ॥

सीते ! ऐसे मधुर शब्द का श्रवण करते ही सर्वश्रेष्ठ शाश्वत-अनन्त गुण गणागार श्रीराम स्वामी भी अष्ट सात्विक महाभाव से पूर्ण हो जाते हैं, जब ऐसी बात है तब आपके श्री चरणों में विद्वान पुरुषों की परात्परा प्रेमाभक्ति क्यों नहीं हो जाती है ? हे सीते ! वे परम भक्तों को अज्ञानी कहकर निन्दा क्यों करते हैं ? यदि ऐसा करते हैं, तब व्यर्थ ही प्रामाणिक वक्ता क्यों कहाते हैं ? ॥ ५५ ॥

जो जो वेद पुराण शास्त्र आपके तथा आपके कान्त श्रीराम के कथा सुधारस से भरपूर हैं वही मेरे लिये परम वेद्य तथा मननीय है, उन उन शास्त्र पुराणों को मैं मस्तक नवाकर पुनः पुनः प्रणाम करता हूं परन्तु हे श्री सीते ! जिसमें आपके गुणानुवाद लीला चरित्र का वर्णन नहीं है मैं आर्य पुरुष प्रभु की शपथ खाकर कहता हूं वह मेरे लिये न मान्य है, न अर्चनीय है, न और पूजनीय है, क्या करूं मेरा स्वभाव ही ऐसा हो गया है ॥ ५६ ॥

हे अनघे ! उसी देश को-उसी समय को-उन्हीं प्रजाजनों को मैं परम शुभ मानता हूं जहाँ आपकी कथा सुधा का अतिपावन परस्पर प्रतिस्पर्धा बढ़ाते हुए गान होता है, तथा श्रोता गण अष्ट सात्विक भावों से भरपूर होकर प्रेमपूर्वक श्रवण करते हैं । हे श्रीसीते ! मुझे भी तब तक वहीं रखें जहां आपकी कथा के साधु वचनों का सुन्दर श्रवण करने का अवसर मिले, तथा वही मेरे जीवन की सञ्जीवनी बूटी हो जाय, यही प्रार्थना है ॥ ५७ ॥

आप ही युगल प्रभु परात्पर देवता है, उसमें भी पर आप हैं, हे सीते ! सभी पुराणों के वन में भ्रमण करने वालों को यही एक सिद्धान्त रूपी सुखद पवन अनुभव करने को मिलता है। आपके प्रियतम का स्वरूप वेद के गहन वन में ऐसा गुप्त छिपा है कि वह सर्व जन भोग्य होते ही नहींहैं, इसलिये आप जैसी है, जिस प्रकार से जानी जाय, मुनिजनों द्वारा उस निर्दिष्ट रीति का ज्ञान, कृपा कर हमको भी करावें ॥ ५८ ॥

निस्सीम बाधा रहित दिव्यामृत श्रीहरि का यह षड्गुणैश्वर्य ऐसा ही है इस प्रकार कोई कह नहीं सकता है । ठीक वैसा ही परम ऐश्वर्य आपका भी है, हे वाम नयने ! हे श्री वैदेही ! आप ही ज्ञान की परम अवधि सीमा हैं, हे परम सुन्दर हँसते हुए मुखारविन्द वाली ! किसी के परम शान्त हृदय में आपके उन साधारण गुणोंमें से यदि किसी भी गुण का उद्भव हो जाताहै, तो उसके पहलेके किये हुए असत् कर्म सब नष्ट हो जाते हैं, तथा पुनः वह उसकी कभी छाया भी छू सकते नहीं हैं ॥ ५९ ॥

अग्नि पुरस्सर वेद मन्त्रों द्वारा वन्दित देवगण ही स्थिर हैं ऐसा लोग कहते हैं, परन्तु क्या वे दूध से निकाले गये घी के समान पृथक् ही हैं, मनुष्यों में तथा उनमें क्या ऐसा कोई

अन्तर है, ऐसी शङ्का होती है, यदि किसी के विचार से दृष्ट तथा अदृष्ट सर्व प्रकार की करणी ही इसका कारण है, ऐसा कहा जाता हो, तो मेरे मत से तो हे श्री मैथिली जी ! मैं सब विलास रङ्ग तरङ्ग की तरह आपकी ही कृपा दृष्टि की महिमा है यही जान पड़ता है ॥ ६० ॥

वेदा धर्मपरा इतीश्वरमतं लीलापरा इत्यपि—
स्यादेवं निगमः प्रमाण सुगमः किन्तद्द्वयं तत्त्वयोः ।
दृष्टं तत्तु तवैव देवि कमितुर्विस्तीर्णपूर्णा हि ते—
तोषायालमिदं तवेति विषये सीते त्वमेवोत्तरम् ॥ ६१ ॥

क्रीडानां तु पुराण वित्तवपुषामस्य त्वमना सर्वथा—
कर्तृत्वं विपर्ययत्वमप्यभिमतं पत्युस्तवैवेश्वरैः ।
सञ्ज्ञा राम इति प्रतीत विदिता मुख्यामवापैप यत—
तद् ज्ञेयं त्विद मेव नाम मधुरं सीते हरेर्नामसु ॥ ६२ ॥

भूषानेवा न केवलं किलसितो धर्मैस्त्रयाह्लादनैः—
किं त्वाराद्यवतार जातमपि ते नेतूरिरंसोः सिमं ।
विश्वं तस्य च देवता अपि गुणैः सत्त्वादिभिर्यत सिता-
स्तत सीतेत्यभिधाहित ते भगवति श्रीरामचन्द्रेन्दिरे ॥ ६३ ॥

सिद्धायाः स्वत एव सर्वविभवैः सीतेतयत्युच्यते—
रङ्गस्पर्श सुधारसानुभवता पुष्टिं परां बिभ्रता ।
त्वत्कान्तेन तु पोष्यते जगदिदं रक्षादि दक्षेण च—
त्वत्तोषैक मनोरथेन विभुना कस्तं त्वदाराधनम् ॥ ६४ ॥

यद्यं तज्जगदम्ब यो म भजते दोषा ततः किं स्वतः—
स्वानन्दस्त्वविलास दिव्यचरितं स्वाम्यादि भङ्गो भवेत् ।
येषां भाग्यमुदेत्य हेतुकमुदे ते तु त्वदादेशगा—
किं किं कुर्वत एव पर्वतसुतापत्यादि सर्वाञ्चिते ॥ ६५ ॥

सत्यस्नेह सिताः परव्यवसिताः सीते सुरैः सम्मता—
निर्दोषामृत सेव्य दास्य रसिका ये सेवका तेऽस्तु ते ।
दुर्दैव प्रतिमल्ल शल्य शकना शिष्टानु शिष्टाक्षमा—

जीयन्ते न परैः परावरपति प्रेयस्य श्रेयोस्पृशः ॥६६॥

रूपैश्वर्य विभूति धर्मगुणेषु स्वाद्येषु तेषु स्वतो—
रूपं तद्गुण राशयोऽपि तु यथा मह्यं स्वदन्ते तथा ।
नान्येनन्य गुणस्वरूप विभवैश्वर्यादि साम्राज्यके—
सीते ! रूप गुणस्वभावसुधया संतर्पणीयो जनः ॥६७॥

कोई कहते हैं वेद-धर्म-कर्म की विवेचना परक हैं तो कोई कहते हैं वेद तो जगदीश्वर की लीला विहार का वर्णन करते हैं, यदि ऐसी बात हैं तो इन दोनों बातों का निर्णय करने में वेद का वाक्य प्रमाण ही सुगम है, परन्तु जब इन दोनों का रहस्य समझने का विचार करते हैं तब हे देवि ! स्पष्ट रूप से यही देखने में आता है कि आपकी ही विस्तीर्ण पूर्ण महिमा का मान निकालने का ही यह सब प्रयास है, तब उनको आपके विषय में ऐसा ही समझना चाहिये इसका उत्तर तो हे सीते ! आप ही एकमात्र समझा सकती हैं ॥ ६१ ॥

जिनकी अन्तरात्मा में आप विराजमान हैं, ऐसे आपके पति ही जगत् की क्रीड़ा के कर्ता वर्ता हैं, ऐसा ही वेद पुराणों के विज्ञ विद्वानों का अभिमत है, उनकी संज्ञा राम है ऐसा सुविदित है, जगत् के ईश्वर कहाने वाले त्रिदेवों का भी यही मन्तव्य है, ऐसा प्रतीत होता है, परन्तु मुख्य बात तो यह है कि हरि के अनन्त नामों के रहते हुए भी उनका गेय तो मुख्यतः हे सीते ! आपका यही मधुर नाम है, और यह बात भी सर्व विदित है कि आपके मुख्य सहयोग का ही यह सब मधुर फल है ॥ ६२ ॥

आपके प्रियतम की मधुरता सिता मिश्री जैसी जो मानी जाती है वह आपके आह्लादनादिक धर्मों के योग से ही है, उनके अवतार के पश्चात् तुरन्त आपका भी अवतार हुआ इसका कारण भी उनकी माधुर्यता को विकसित करने के लिये ही हुआ है, यह विश्व तथा उसके देवता भी सत्व आदि गुणों के कारण जो मधुरता प्राप्त करते हैं वह भी 'सिता' कहलाती है। हे भगवति ! हे श्री रामचन्द्र जी की इन्दिरा ! यह सीता नाम की अभिधा तो आपकी ही है ॥ ६३ ॥

हे सीते ! स्वतः सिद्ध आपका सर्व वैभव आपके द्वारा ही अत्यन्त उन्नत है, अथा आपके दिव्य देह की सुधा रस भरित स्पर्श का अनुभव प्राप्त करके श्रीरङ्ग प्रभु भी परम पुष्टि को प्राप्त होते हैं, यही आपका बल पाकर आपके कान्त के द्वारा इस जगत् की रक्षा में सुदक्षता प्राप्त कर इसका पोषण करने में समर्थ होते हैं। वे विभु भी आपको प्रसन्न करने का मङ्गल मय मनोरथ करते रहते हैं, तब दूसरों के लिये तो आपका आराधन कठिन ही है ॥ ६४ ॥

हे जगदम्बा ! यदि इस जगत् के लोग आप युगल प्रभु का भजन नहीं करते हैं, उसमें आपका स्वतः क्या दोष हैं ? तथा इस कारण से न तो आपके दिव्य चरित्र के स्वतन्त्र स्वा-

मित्व का ही भङ्ग होता है, जिनका भाग्य उदय होता है, उन्हें अनायास यह आनन्द प्राप्त होता है तथा वे ही आपकी दिव्याज्ञा का पालन करते हैं, हे सर्वार्च्चिते ! सर्व पूज्ये ! इसीलिये पार्वती जी आदि अपने पतियों के सहित आपकी क्या क्या सेवा नहीं करती हैं ? ॥ ६५ ॥

जो सत्य तथा स्नेह से अभिसिक्त हैं, जो दूसरों का परोपकार करने के व्यसनी हैं, जो आपके दास्य रस के रसिक है, जो आपकी सेवा रूपी निर्दोष अमृत को ही परम सेव्य मानते हैं, ऐसे ही जो आपके सेवक हैं वे हे सीते ! देवताओं द्वारा सम्मत सज्जन है, जो दुर्दैव अभाग्य के प्रतिभट (प्रतिद्वन्दी) हैं, शल्य कण्टकों को नष्ट करने वाले हैं, शिष्ट जनों को भी शिक्षित करने में सक्षम हैं, वे दूसरों के भरोसे नहीं जीते हैं, केवल परात्पर नाथ आपके प्रियतम के श्रेयस् का स्पर्श पाकर धन्य हो जाते हैं ॥ ६६ ॥

रूप-ऐश्वर्य-विभूति तथा धर्मादि गुणों में स्वतःस्वादनीय वस्तु कुछ भी नहीं है, यही कारण है कि रूप तथा उसके अन्य गुणों की राशियां अन्त में नहीं के बराबर हो जातीं हैं, इस लिये इस अपने सेवक जन को तो अन्यान्य स्वरूप विभव ऐश्वर्यादि साम्राज्य में विमुग्ध न बनाकर हे सीते ! अपने ही रूप, गुण, स्वभाव की सुधा माधुरी से सन्तृप्त करेंगी यही प्रार्थना है ॥ ६७ ॥

दासीनामपि ते तु रूपविभवो गीर्भ्योऽपि दूरे सतां–
तत्रैषामपि देवरूप सुषमा सीमेति भूमा भ्रमः ।
सीमा या हि तवैव ताः स्तुतिगिरो जातावकाशास्त्वयि–
स्वां निष्ठामभियान्ति पंक्तिकगुणाः सर्वेऽपि सीते ततः ॥६८॥

त्वत्सेवास्थित तावकीन गुणवत् सारूप्यरूपा तु ते–
कर्त्तव्योत्सव कारिणीषु युवयोर्नित्यानुकूलास्तु ते ।
दासीषु प्रतिरूपभाव विषया बुद्धिर्न जायेत ते–
कैश्चित्स्वैर्हि गुणैः सुखाधिकतमैर्भेदेऽपि सीते स्थिते ॥६९॥

दासी दासरसाश्रया अपि तव स्त्रीरत्नभूताः सुरैः–
सेव्या स्युः सुलभा न ते सुवयसस्तेषामपि प्राणताम् ।
ईशा मोहयितुं सुरासुरमुनीन् कर्तुं च कार्यं तव–
त्वत्कीर्तीन्दु करानिजाः परिकराः क्षेमंकरा भूसुते ॥७०॥

यान्यङ्गान्यनुभूयते हि ललनाः कान्तत्वकामास्तु ते–
कान्ताङ्गान्यपि तेऽनुभूय च तथा तद्भाव भावाकुलाः ।

यद्यप्येवमथापि तासु तव किं कोयोऽन्यया वा मतिः—
किन्तु त्वत्स्मित केलयोऽस्ति यदिदं जानक्यंशकीक्रिये ॥७१॥

दृष्ट्वा त्वं मुकुरे तवापि न भवेन्मोहोऽहमेषा न वा—
स्यामित्थं कथमद्भुतेऽति मधुरेऽत्यन्तं च रूपान्वयात् ।
आत्मीयैः परिचारिकैस्तु सगुणैर्याति प्रहासोत्सवं—
कृत्वा सत्र सखी व्रजस्य जनक प्रेमास्पदा शंकिते ॥७२॥

सत्स्नेहोघननीलिमार्य ऋजुता लूतोर्ण सौक्ष्म्यं शुभं—
दैर्घ्यं संहतिराचरी ध्रुवपदं व्योमामलत्वं श्रुतेः ।
ऐकाग्र्यं च मनोज्ञगन्धमृदु ते जाति सरोज स्रजोः—
संस्पृष्टास्तव कुन्तलैरितिगुणा दोषैर्धृता जानकि ॥७३॥

स्वाङ्गे नीलमणित्विषि प्रति कलत्सीतेस्मितं ते सितं—
दृष्ट्वा त्वद्वदनेऽपि चन्द्रवदने कस्मादियं चन्द्रिका ।
इत्यालोचन लग्न मञ्जु मनसं कान्तं विभान्तं पुर—
स्त्वं तत् कौतुकिनीतरां प्रहससि प्रेम्णोस्थितं स्वेवशे ॥७४॥

गुणौमुल्यसुधा घटावुर्सि ते सिन्धुस्सुधांमथ्नता—
कान्तेनामरदैत्य मोहन कृता कृत्वान्यथा तां सुधाम् ।
त एवामृत भाजने यदनुसंधत्ते करेणैव तत्—
सत्यं सूचयतीदमित्यनुकलं स्नेहस्नुतेसीतिके ॥७५॥

वेदान्तार्क विकासनोय महिमानहो गुणात्माम्बुजो—
योऽलं नः परिरक्षितः स तु तथापाङ्गेषु पंगूकृतः ।
तेनेषु स्मरसेवकेषु बलिभुक्त्वत्स्वामिके जंगमे—
रक्ष्येरन्परिचारिकास्तव कथं रामत्रिवर्गेश्वरि ॥७६॥

वेदान्तै प्रतियत्न कर्म निपुणैर्ये गुणादर्शिता—
भर्तुस्ते परमात्मधाम भगवच्छब्दादिशक्यस्य ते ।
ते ते स्युः परिहास केलिरसदाः सीतेऽसिताक्षि क्षणं—
यद्वा ते बहिरङ्ग सङ्गिजनतास्तिक्ष्यादि मत्यैं मंताः ॥७७॥

आपकी दासियों के भी रूप-गुण-वैभव का वर्णन सज्जनों की वाणी से भी पर अवर्णनीय है, तब उनके देवताओं का रूप "सुषमा की सीमा है" ऐसा भ्रम नहीं होना चाहिये। सीमा तो आपकी ही स्तुति करने में थककर अवकाश प्राप्त कर आप में एकनिष्ठ वाणी बनकर सबकी सब हे सीते ! आप के ही चारों ओर पंक्ति बद्ध होकर गुणगण रूप से सुशोभित हो रही है ॥ ६८ ॥

आपकी सेवा में रहने वाली आपके गुणों के जैसे स्वरूप धारण कर सारूप्यादि मुक्तियां आप दोनों प्रभु के आनन्दोत्सव की वृद्धि करती हुई नित्य अनुकूल आज्ञा कारिणी बनी रहती हैं। अपनी दासियों में अपना ही प्रतिरूप अपने ही समान है, ऐसी भावना आपको न हो जाय (क्योंकि आपकी कृपा से वे भेद होते हुए भी आपके ही समान दीख रही हैं) इसलिये हे सीते ! वे आपकी सेवा साधना में दत्तचित होकर लगी रहतीं हैं ॥ ६९ ॥

दासी दास भाव के रसाश्रय को लेकर जो जो भाग्यशाली स्त्री रत्न का स्वरूप धारण कर आपकी सेवा में रहती हैं, वे उच्चकोटि के देवताओं द्वारा सुसेव्य होती हैं ! ऐसा बन जाना भी सुलभ नहीं है बड़ा दुर्लभ है। वे सुर-नर-मुनी तथा ईश्वरों को भी मोहित करने में परम समर्थ आपकी इच्छानुसार कार्य करती रहती हैं, वे सब आपकीं कीर्ति रूपी चन्द्रमा का किरणों के समान आपकी परिकायें सेविकायें हे भूमिसुते ! सदैव परम कल्याण करने वाली ही होती है ॥ ७० ॥

आपके अङ्ग प्रत्यङ्ग की अलौकिक शोभा सुन्दरता का अनुभव कर परिचर्या परायण ललनायें आप में कान्त की भावना कर भावविभोर हो जाती हैं, उसी प्रकार प्राणनाथ प्रभु के अङ्ग प्रत्यङ्ग का सौन्दर्य निहार कर उनके भाव में भी वैसी ही विभोर हो जाती है। यद्यपि होता ऐसा ही है तथापि आप में तथा प्रभु में अन्योन्य जो भावुकता की अधिकता है उसका तो कोई पार ही नहीं पा सकतेहैं, उनको आपके तथा आपके प्राणनाथ में जो इतना प्रेमाधिक्य होता है उसका भी यही कारण है कि वे सभी आपकी ही अंशजा हैं ॥ ७१ ॥

हे श्री जनक जी की परम प्रेमास्पदा श्री किशोरी जू ! आप जब दर्पण में अपने मुख-चन्द्र की छवि अवलोकन करतीं हैं तब आपको भी भ्रम हो जाता है कि दर्पण में दीखने वाली प्रति छवि क्या मेरी ही हैं ? अथवा कोई दूसरी ही है ? ऐसा क्यों होता है ? इसका कारण तो आपके स्वरूप की अत्यन्त मधुरता ही हैं, यह बात भी आपको तब ज्ञात होती है कि जब आपकी इस मोहित अवस्था को देखकर आपकी आत्मीय सखीजन हंसती है और आनन्दोत्सव मनाती है, तब आपके पूछने पर सखियां आपकी शङ्का का निवारण करती है ॥ ७२ ॥

हे श्री किशोरी जी ! आपके पावन केशों का स्पर्श पाकर चिकनाई तथा नीलिमा मेघने, कोमलता तथा सूक्ष्मता मकड़े के जाल ने, माङ्गलिकता-दीर्घता तथा संहिता (परस्पर ऐक्यता) अक्षरों ने, स्थिरता तथा निर्मलता आकाश ने, एकाग्रता मनोहर सुगन्ध तथा मृदुलता जूही-कमल एवं पुष्प माला ने प्राप्त की है, हे श्री जानकी जी ! इन दोषों के धारण करने वाले भी आपके संसर्ग से गुण रूप हो गये हैं ॥ ७३ ॥

अपने अङ्ग में नीलमणि की कान्ति के समान श्यामता तथा आपके मुखचन्द्र का मन्द स्मित मधुर उज्वल हास्य देखकर क्या यह चन्द्र वदन की चन्द्रिका छिटक रही है ? ऐसा मन में विचारते हुए आपके प्राणनाथ के नयन मञ्जुल भाव में निमग्न हो गये हैं। तब अपने सम्मुख प्रकाशित टकटकी लगाये निहारते हुए प्रियतम को अपने प्रेम में वशीभूत देखकर आप केलि कौतुक करती हुई प्रसन्न चित से हंस रही हैं, आपका यह रहस्य हमारा सदैव सुमङ्गल करे ॥ ७४ ॥

समुद्र मथकर निकाली हुई सुधा से आपके प्रियतम ने देवताओं तथा दैत्यों को विमो-हित कर उस सुधा को अन्यथा सिद्ध निस्सार कर दिया था, तब जिन कर कमलों से अमृत का घट रिक्त (खाली) कर दिया था उन्हीं हाथों से उसमें प्रभु ने दिव्य सुधा रस भर दिया, प्रतीत होता है कि वही दिव्यामृत भरे हुए युगल घट आपने अपने हृदय में छिपा रखे हैं। हे सीते ! आपके हृदय से जो स्नेह सुधा वरस रही है वही वास्तविक सच्चा अमृत है इसलिये प्रियतम को परम अनुकूल दिव्यामृत प्रदान करने के लिये ही आपने उसको छिपा रखा है ॥ ७५ ॥

वेदान्त रूपी सूर्य के द्वारा विकसित होने वाले आपकी महिमा तथा सभी आत्मीय गुण स्वरूप कमलों को हम लोगों जो अपने अन्तः करण में सुरक्षित रखे थे उनको तो आपकी इस दिव्य मङ्गलमय विग्रह की कान्ति ने पँगुल बना दिये हैं (अर्थात् हम जैसा समझते थे उससे अनन्त ऐहिक प्रभाव अलौकिक प्रतिभा का दृष्टिगोचर हो रहा है) उन्हीं सुन्दर गुणों के द्वारा हम सेवकों को आपके स्वामी से आप हमारी रक्षा करवायें क्योंकि हम सब आपकी परिचर्या करने वाली परिचारिकायें उनको श्रीराम के दिव्य स्वर्ग श्री साकेत धाम की ईश्वरी हे श्रीसीते ! आप कैसे भूल सकती हैं ॥ ७६ ॥

वेदान्त ने भव वन्ध विमोचन करने में निपुण जो-जो गुण तथा कर्म दिखलाये हैं वह परमात्मा-परमधाम-भगवान् आदि शब्द वाच्य आपके भर्ता में विराजमान है, परन्तु रसिक जन अन्तरङ्ग विलास में वह सब आपके परिहास रस केलि बढ़ाने वाले हैं अथवा तो बहिरङ्ग भक्तों की अस्तिकता आदि बढ़ाने के लिये ही है ऐसा ही मानते हैं ॥ ७७ ॥

यः स्वामी जगतामनादिपुरुषः सोऽयं त्वयैवेकया-
नारीनाथकतांगतो हतरिपु लंब्ध्वा त्वयोध्यापुरम् ।
निर्व्याजं नर चन्द्रराम रतिदे लोकोऽपि योषिद्युतो-
नस्यां किं तव दासवृत्ति विधया नार्य्यानियोन्योऽनिशम् ॥७८॥

एको यः पुरुषोत्तमः सपुरुषोयोऽन्योऽपि पूर्वस्त्वया-
नीतो पूर्वगुणैरपूर्व विधता मन्त्यः प्रकृत्यापि सः ।
एवं दासिकया सहैव तु तथा सीते समा शाश्वती-
कांडानां प्रकरोत्वशत्रु भवती राज्यं विराजार्चिता ॥७९॥

कानन केलि कलोल करत हिय
पारिजात वन पावन निरखि
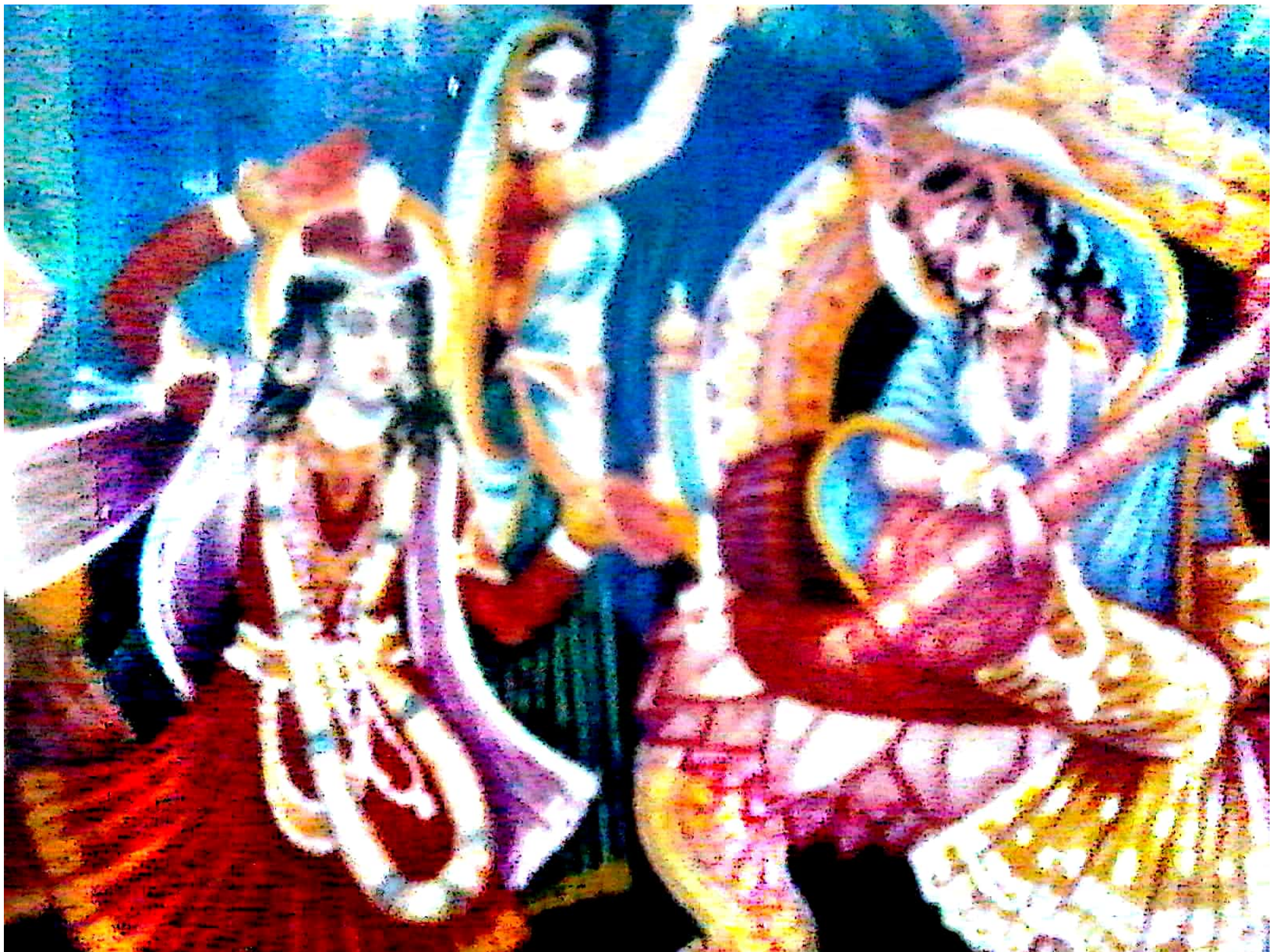
वन विहार बैठे पिय प्यारी, आगे आय खरी

नटत सियाजू पिया लेत बलिहरिया।
छम छम छमकत नूपुर बजावत पिया मन मोहति हरि हरिया।

बिहरत चम्पक वन पिय प्यारी।